संदेह का सिन्दूर

[परदेशी की प्रसिद्ध कहानियाँ]

परदेशी

प्रकाशक

१ नया व्यापार

आनन्द जी मेरे मित्र हैं। मित्र तो क्या, दूर के जैसे रिश्तेदार होते हैं, वैसे ही दूर के मित्र हैं। बरसाती बादलों की तरह रोज नहीं मिलते, आसाढ़ की धूप की तरह कभी-कभी झलक दिखा देते हैं।

पहले, मलाड की हाथीभाई चॉल में रहते थे। एक छोटी-सी खोली थी। बरसात में जिसके चारों ओर घुटनों तक कीचड़ जमा हो जाता और उस कीचड़ में मच्छरों के समूह दिन रात अखण्ड कीर्त्तन करते, लेकिन 'तिरिया-चरित' और 'पुरुष का भाग्य' मौजूदा समाज-व्यवस्था पर, बोतल के लेबल की तरह ठीक फबते हैं, सो आनन्द जी अब मलाबार हिल्स पर दो हजार मासिक किराये के फ्लेट में रहते हैं और हर साल गर्मियों में कश्मीर नहीं तो ऊटी अवश्य जाते हैं। पहले दहीसर से दादर तक लोकल ट्रेन में, डिब्बे के बाहर इधर-उधर झांकते हुए, खड़े-खड़े सफर करते थे, अब बढ़िया केडिलाक् कार है और अच्छा-सा एक स्कूटर भी। उस पर, हर रविवार के दिन अपनी दूसरी बीवी को साथ बिठा कर सैर करते हैं।

वक्त इस तेजी से गुजर जाता है कि कभी-कभी हमें अपना ही चेहरा अजनबी लगता है और अपनी ही सांसें नयी और अजानी लगती हैं। समय का फेर कि जो आनन्द बाबू कदम-कदम पर धक्के खाते थे, अब वही मनचाहे ढंग से अनचाहे लोगों को धक्का देते हैं। पहले पाई-पाई को राई-राई तरसते थे अब घर-आँगन में सिक्के बरसते हैं!

मुझे उनकी इस उन्नति का समाचार किसी ने न दिया। वे खुद तो देने ही क्यों लगे, शायद मुझे भूल ही गये होंगे। इधर जब कई दिन तक मुलाकात नहीं हुई और न उन्हें कई दिन तक, दस-पच्चीस की गाड़ी में 'वर्गशत्रु'–टिकिट चेकर से सावधान खड़े हुए नहीं देखा तो, मैंने

जुलता है ! लेकिन कहाँ बेचारे आनन्द, कहाँ ये डायरेक्टर ! वे राजपथ पर, ये राजरथ पर !

डायरेक्टर महोदय ने नज़र उठा कर सामने देखा और बैठने का संकेत किया। मैंने घर से चलते वक्त लल्लू को कितना समझा दिया था कि डायरेक्टर जब बैठने के लिए कहें, तभी उनके सामने धीमे से कुर्सी पर बैठ जाना और ध्यान रहे, कुर्सी को इधर-उधर हिला-डुलाकर आवाज़ पैदा न करना, लेकिन उसने ऐन वक्त पर मेरी शिक्षा के विपरीत ही किया, वह बेचारा भी क्या करता। नये वातावरण में अच्छे-अच्छे आदमी चौकड़ी भूल जाते हैं। छोटे-से गाँव से जब नया आदमी पहले-पहल बम्बई-जैसे विराट् नगर में आता है, तो कई दिन उसका सिर चकराता है और वह राह चलते चौंक उठता है। कहाँ गाँव की पाँच हजार की बस्ती, कहाँ ये पैंसठ लाख ! चारों ओर आदमी ही आदमी ! मकानों में, खिड़कियों में, सड़कों पर मीलों तक आदमी ! ट्राम, डबल डेकर बसें और टैक्सियाँ और लारियां और जिधर देखो उधर कारें और तरह-तरह की वेश-भूषा और विविध रंग-रूप !

लल्लू की कुर्सी की आवाज से डायरेक्टर महोदय का दिमाग गरम हो गया। उन्होंने घूर कर उधर देखा। और फिर एक नज़र मेरी ओर डाली—"अरे, रे आप ! नहीं पहचाना, मैं आनन्द हूँ।"

"माफ़ कीजिये, मैं इसी दुविधा में पड़ा था।"

"हाँ भाई, स्वाभाविक है, कहाँ हमारे वे दिन और कहां ये दिन !" उन्होंने घण्टी दबायी और वर्दी में लैस नौकर हाजिर हो गया।

"चाय लाओ।" नौकर सिर झुका कर चला गया। आनन्द जी ने लल्लू की ओर मुस्करा कर देखा। मुझसे कहने लगे—"ये आपके परिचित हैं ?"

"बहुत। मेरे बड़े भतीजे हैं।"

"वाह, फिर क्या चाहिए !" उन्होंने फिर से एक बार लल्लू को देखा और जैसे लल्लू की जान में जान आयी।

मैंने चुप रहना ठीक न समझा। और अब तो साँस भी अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगी थी। बोला—"आनन्द जी, आप को बारम्बार बधाई। आपकी यह उन्नति देख कर मेरा मन बहुत-बहुत प्रसन्न हुआ। ईश्वर आपको और भी अधिक सफलता प्रदान करे।"

"हाँ भाई, सब ईश्वर की कृपा है। हम सब तो उसके हाथ के खिलौने हैं। वह बहुत बड़ा सूत्रधार, नाटककार है और उसने इस संसार में हमें अपना-अपना फर्ज़ अदा करने के लिए भेजा है। अपनी-अपनी भूमिका-अभिनय पूरा करने के लिए जन्म दिया है।"

"वाह! ईश्वर पर आपकी बढ़ती हुई आस्था देख कर मुझे और भी ख़ुशी हुई। तो आनन्द जी, आपकी कम्पनी का खास धन्धा क्या है? कृपया, इस प्रश्न के लिए क्षमा करें।"

"क्षमा की क्या बात, भला आप तो घर के आदमी हैं।"

"बेशक। आपकी हमारी पहचान आज की नहीं।"

आनन्द जी कहने लगे—"हमारा धन्धा हिन्दुस्तान में ही नहीं, दुनियां भर में एकदम नया और अनोखा है!..."

"वाह! वाह!! दरअसल हमारे देश को नये-नये उद्योग-धन्धों की जरूरत है। आप जैसे चतुर व्यापारी ही नये धन्धों की कल्पना को साकार सफल रूप दे सकते हैं, वरना और लोग तो वही पुश्तैनी पेशा करते हैं। कपड़े की दूकान खोलेंगे या चाय का होटल! ईंटों का भट्टा लगायेंगे या ठेकेदारी का काम करेंगे! यन्त्रों से कुछ मोह हुआ तो लॉरी चलवायेंगे या सिनेमा-घर!"

मेरी बात सुनकर आनन्द जी बड़े प्रसन्न हुए। पुलकित होकर उन्होंने अपनी जेब से सुनहरा सिगरेट-केस निकाला और सिगरेट मेरी ओर बढ़ायी। सिगरेट पर उनका नाम सुनहरे रंग में छपा था और उसे सुलगाने पर मेरे मन में यह भ्रम पैदा हो गया कि जरूर इस तम्बाकू और इस धुएँ पर भी आनन्द जी का नाम कहीं न कहीं अंकित है!

आनन्द जी ने दो-चार लम्बे कश लिये और कहने लगे—"भैया, खास तौर पर हमारी कम्पनी...सभी तरह के आदमी यानी मजदूर

सप्लाई करती है। मेरा मतलब एकदम मजदूर नहीं, पर यों समझिए एक्सपर्ट हैण्ड, जैसे फ़िल्मों के लिए एक्स्ट्रा, सभाओं और जुलूसों के लिए सभापति और वक्ता।"

सुन कर मैं दंग रह गया।

वे कहते रहे—"तरह-तरह के आदमी, डॉन्सर लड़के और लड़कियां; जुलूसों के लिए आप चाहें जितने आदमी, हम सप्लाई कर सकते हैं।"……

तब तक चाय आ गयी। आनन्द जी ने आग्रह-पूर्वक लल्लू के हाथ में बिस्कुट दिये और मेरे लिए चाय में चीनी चलाते हुए बोले—"अभी हम अपने मालगोदाम और कारखाने पर चलते हैं। वहाँ का हाल देख कर आपको सारी चीज समझ में आ जायगी। आप जैसे दोस्त को अपनी मिहनत का हाल-चाल सुना कर मुझे भी खुशी होगी।"

कुछ देर बाद, आनन्द जी की शानदार केडिलाक् में बैठ कर हम एक बड़े हॉल में पहुँचे, आनन्द जी जिसे, 'कारख़ाना' कहते थे।

कारखाने का हॉल देख कर मेरी आँखें चकित रह गयीं—हजारों आदमी अलग-अलग विभागों में काम कर रहे थे। कई केबिन और हिस्से बने हुये थे। कहीं नृत्य चल रहा था, कहीं संगीत। कोई महाशय ज़ोर-ज़ोर से भाषण दे रहे थे, कोई ब्राह्मण-वेश धरकर मन्त्र जप रहे थे और श्लोक पढ़ रहे थे। कुछ लड़कियां गाने की प्रेक्टिस कर रही थीं। उनके बीच एक सजी-बसी सुन्दरी को देख कर मैं चकित रह गया—

"क्या आपने सुरैया जी को भी…?"

मेरे मित्र ज़ोर से हँसने लगे—"यह सुरैया नहीं है। उनके जैसी ही लड़की है।" और आवाज़ धीमी कर कहने लगे—"आप से क्या छिपाना—यह लड़की अब आसानी से राजा-रजवाड़ों और सेठ-साहूकारों की महफ़िलों में, बम्बई से दूर कस्बों और शहरों में भेजी जा सकती है। जहां यह अपनी कला दिखलायेगी।"

मैं तो इस नकली लड़की का मेक्अप और चेहरा ही देखता रह गया! मित्र आनन्द जी कहते रहे—"इसी तरह कमलबाला, रूपमाला,

मुकेश आदि भी हमारे यहां तैयार हैं !"

तब तक सुरैया (नकली) गाने लगी—"तेरे नैनों ने चोरी किया...परदेसिया...परदेसिया ।"

मुझे तो यकीन हो गया कि यही असली सुरैया है और असली सुरैया नकली सुरैया है। इसी प्रकार शकीला भूपाली, सुधा मलहोत्रा और जाने कितने कलाकार इस कारखाने में ढल रहे थे। इस विभाग से निकल कर हम दूसरे विभाग में आये। यहां कई लड़कियां नाच रही थीं और वे वजीफ़दार, दमयन्ती जोशी और जवेरी-बहनों का भेष किये, वैसा ही चेहरा-मोहरा बनाये, रिहर्सल कर रही थीं। अगले कमरे के बाहर दरवाजे पर 'कविगण' लिखा था। यहां नकली या कहूँ असली वीरेन्द्र मिश्र, कैलाश वाजपेयी और भवानी मिश्र कविता पाठ का प्रशिक्षण लेरहे थे। साहित्य से तनिक-सा नाता होने के कारण, मैंने उत्सुकता दिखलायी। आनन्द जी मेरी बेचैनी देखकर बोले, "कैलाश जी, ये मेरे मित्र हैं, ज़रा इन्हें अपनी एक-आध पंक्ति तो सुनाइये !"

कैलाश जी ने, यानी नकली कैलाशजी ने मुस्कराकर बिना आधी झिझक और पूरी बेशर्मी से मुझे नमस्ते किया और अपने चेहरे पर उदासी, गमगीनियत और मासूमियत लाकर कविता पढ़ी—"ज़िन्दगी मौत है, मेरा जनाज़ा जब निकले, तुम खिड़की बन्द कर लेना।"

कैलाश जी के गले का लोच, दर्द और उतार-चढ़ाव देखकर, मैं कैलाश जी को भूल गया। आनन्द जी ने अपना ट्रेड-सिक्रेट बताया—"बतलाइए, यदि हम इन्हें अपने यजमानों के यहां, शादी-ब्याह या नामकरण के जलसे में भेज दें तो, दूर के शहरों में रात के समय भला कोई पहचान सकता है ? और अगली सुबह की ट्रेन से हमारा जमादार यानी कवि-सम्मेलन का संयोजक तो इन्हें वापस बम्बई ले आयेगा...मिश्र जी आप भी कुछ सुनाइये।"

खादी का कुर्ता, धोती और चप्पल रहित पैर देखकर, मैं 'तार सप्तक' और गाँधी आश्रम के पुराने मिश्र जी को बिसरा बैठा और जैसे इस मिश्र ने मेरे मन पर मुहर डाल दी—"मैं ही मिश्र हूँ।"

उन्होंने शुरू किया—''और कब से यह कहता रहा भवानी, नहीं रुकेगी ज़िन्दगी की रवानी। ओढ़ कर रेशमी दुपट्टा, धानी—भरने जब वो आई मेरे पनघट पर पानी।''...

मेरे मुँह से अनायास 'वाह, वाह' निकल पड़ा। सोचा धन्य है जापान, जिसने हरेक चीज़ की हरेक नकल में दुनिया को मात करदिया। जेकोस्लाविया की कांच की कोई चीज़, पांच सौ या हज़ार रुपये की, और वही, वैसी ही, जापानी वस्तु पांच रुपये की। लेकिन मन ने कहा, कांच जापानी नकली है और कला उसकी नकली हैं, लेकिन दुनिया कहती है—''मैं ठगने के लिए बनी हूँ, मुझे ठग कर देखो।''

इस तरह हम एक से दूसरे केबिन, स्टूडियो और कमरे में चलते गये। बड़े-बड़े दालान और बरामदे पार किये। अब जो बड़ा-सा एक दरवाज़ा देखा तो, आनन्द ज़ी रुक कर कहने लगे—''देश की कोई भी राजनैतिक या धार्मिक पार्टी हो, हम उसे अपने जुलूस के लिए हजारों डण्डे और झण्डे दे सकते हैं और इन झण्डों को लेकर चलने वाले आदमी भी। कांग्रेसी जुलूस के लिए सफेद टोपियां, स्वयंसेवि-काओं के लिए हरे ब्लाउज़ और सफेद साड़ियां, बापू के चित्र, जवाहर-लाल नेहरू की तस्वीरें और पंचवर्षीय योजनाओं के नक्शे सप्लाई करते हैं। बस, आपका एक फ़ोन मिला कि देखते-देखते हमारे हज़ार, पांच सौ आदमी लैस होकर बाहर निकल आयेंगे। उन्हें हरेक तरह के जुलूस के अदब-कायदे, नियम-कानून और तौर-तरीके समझा दिये गये हैं। ऑफ़िस में रुपये जमा करा दीजिए और रसीद लीजिये। रसीद और उसके साथ का कार्ड, कारखाने पर दिखा देने पर, फौरन घंटी बजती है। आपके आर्डर की पार्टी के लिए, काबिल आदमी पांच मिनट में ट्रकों और लारियों पर लाद कर आपकी पार्टी के दफ्तर पर पहुँचा दिये जाते हैं।''

सुनकर मैं हैरत में रह गया! मेरे पैरों तले की धरती जैसे हिलने लगी, पर आनन्द जी का दिल न टूटे, इसलिए, होठों पर मुस्कान बनाए रहा। वे मेरा हाथ थामे आगे बढ़े और दूसरे द्वार पर आ रुके। यहां

बाहर ही, हमें तरह-तरह की आवाजें सुनायी दे रही थीं। शोरगुल मचा हुआ था और नारे लग रहे थे और भारी कुहरान मचा हुआ था। आनन्द जी ने उस हाल में कदम रखते हुए मुझ से कहा—"यह बहुत बड़ा आइडिया था, जिसने मुझे चन्द दिनों में लखपति बना दिया। आपने तरह-तरह के जुलूसों के लिए काम में आने वाले बांस और झण्डे तो देखे ही हैं। अब उन्हें उठाने वाले और उनके आगे-पीछे चलने वाले बहादुरों का हाल भी देखिये। यह भी एक करिश्मा है।"

हमने देखा मंच पर बैंडमास्टर की तरह, एक ट्रेनर महोदय खड़े थे। और नीचे कुछ हट कर, चन्द नौजवान प्रजा-समाजवादी दल के भेष में 'नारों की ट्रेनिंग' ले रहे थे। ट्रेनर ने डायरेक्टर महोदय को सलाम किया। और मुझे एक कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। आनंद जी के संकेत पर उसने "स्टार्ट" कहा और जवानों ने अपनी जेबों से लाल टोपियां निकालीं और उन्हें सर पर रख कर शोर मचाया—"अपनी मांगें ले के रहेंगे। प्रजा-समाजवादी दल जिन्दाबाद! जयप्रकाशजी ज़िंदाबाद! दलाईलामा ज़िन्दाबाद! साथियो, लाठियों की परवाह न करो! मैदान में डटे रहो। हड़ताल होकर रहेगी। हम नेहरू की योजनाओं में भाग नहीं लेंगे—नहीं लेंगे! पगार दूना और महंगाई चार गुना..."

"ले के रहेंगे···" भीड़ ने दुहराया!

अनायास मेरे हाथ ताली बजाने लगे! इन शहीदों को लेकर तो जयप्रकाश सचमुच नयी सरकार बना सकते हैं। तभी ट्रेनर ने कहा—"दोस्तो, अगर आपके प्रजा-समाजवादी जुलूस के रास्ते में, कम्यूनिस्टों का दफ्तर पड़ जाय या कम्यूनिस्टों का कोई जुलूस मिल जाय, तो आप क्या करेंगे?"

इस प्रश्न का निकलना था कि एक जवाब उछला—"डटे रहो साथियो! तिब्बत आज़ाद मुल्क बनकर रहेगा। तिब्बत यू० एन० ओ० में ज़रूर जायगा। धर्मराज लामा की जय हो।"

इतने में ट्रेनर के इशारे पर कम्यूनिस्टों का (नकली) दल सामने से निकल आया और मैदान में आ डटा। उसे देखते ही प्रजा-समाज-

दियों ने उसे चिढ़ाने के लिए समवेत स्वर में मंत्रोच्चारण शुरू कर दिया— "तिब्बत ! तिब्बत !! हंगरी ! हंगरी !!" इस पर कम्यूनिस्टों के दल ने घूंसे उठा कर, दहाड़ कर गर्जना की—"विदेशी दलाल मुर्दाबाद ! लामाओं का सामन्तवाद मुर्दाबाद ! हिंदी-चीनी भाई-भाई !"

इस पर विरोधी दल ने मुँह में उँगलियां डाल कर अजब तरीके से सीटियां बजायीं और कुत्ते, बिल्ली और गधे की आवाजों के साथ, कहा—"हिंदी-चीनी बाई-बाई (Bye) !

ट्रेनर ने घण्टी दबाई और शहीद लोग शान्त हो गये और आपस में मिल-जुलकर हँसी-मजाक करने लगे। ट्रेनर ने मेरी ओर गर्व से देखते हुए कहा—"साहब, वक्त पड़ने पर, यही लोग एक दूसरे के दल के नारे भी लगा सकते हैं और जनसंघ, केरल के कैथोलिक, मुस्लिम-लोग, हिन्दू महासभा और सिक्ख सरदारों के जुलूस भी बना सकते हैं।"

मैंने भी एक अजब गर्व का अनुभव किया और मन ही मन कहा- "धन्य भारत भूमि ! तेरे नौनिहाल, क्या नहीं कर सकते ?"

ट्रेनर की करामात देख कर, हम अकाउन्ट्स डिपार्टमेण्ट के निकट रुके। आनन्द जी बड़ी मूंछों वाले एक व्यक्ति से बातें करने लगे। मैंने देखा, लगभग एक सौ क्लर्क, टाइपिस्ट, अकाउन्टेन्ट काम कर रहे हैं; चपरासी जिन्हें बम्बई में 'सिपाही' कहते हैं, इधर-उधर फाइलें लिये आ-जा रहे हैं और मुनीम-गुमाश्ते नोटों की गड्डियाँ गिन रहे हैं और रुपया देने वाले ग्राहकों की भीड़ 'क्यू' लगाये खड़ी है। फ़ोन आ रहे हैं। फ़ोन जा रहे हैं—"क्या कहा साहब, जेकब सर्कल, बहुत अच्छा ! कितने आदमी चाहिये आपको, तीन सौ, वाह अच्छा आइडिया है। दूसरी जातियां अपने जुलूस निकाल रही हैं तो भला, धोबी महासभा अपने जुलूस क्यों न निकाले ?... नारों की फिक्र मत कीजिये, हमारे यहां हरेक व्यापार, पेशे और ट्रेड के नारों की फेहरिस्तें यानी डायरेक्ट-रियाँ हैं। धोबी महासभा के जुलूस के नारे मसलन्—'मैले कपड़े जिन्दा-बाद ! साफ कपड़े पहनिये ! गन्दे कपड़ों में टी० बी० और प्लेग के कीटाणु हैं—अमरीकी वैज्ञानिकों का अनुसंधान। साबुन सोडा सस्ता

हो ! पैंट की धुलाई बारह आने, छोटा रूमाल चार आने—इससे कम लेने वालों का बहिष्कार हो ! दग़ाबाजों से सावधान ! धोबियो ! एक हो जाओ ! राष्ट्रीय सरकार नये टैंक, तालाब और नये नल लगवाये ! धोबी राष्ट्र की मूल्यवान् सम्पत्ति है ! पार्लियामेन्ट और यू० एन० ओ० में धोबियों का विशेष प्रतिनिधित्व हो ! धोबियो, शाम की सभा में करोड़ों की तादाद में आइए ! जय धोबी, जयहिन्द !!"

तब, फ़ोन करने वाले महाशय ने तुरन्त रिसीवर रख कर ऑर्डर 'बुक' कर लिया, और अपने सहयोगी से कहने लगे—"मेहता जी, धोबी महासभा तीन सौ आदमी चाहती है। मैंने सारी बातचीत करली है। अभी उनका आदमी आकर दो हज़ार का चेक दे जायगा !"...

मैं मन ही मन आनन्द जी की बुद्धि की प्रशंसा कर रहा था। देश के उत्पादन में इन्होंने कितना बड़ा योगदान दिया है। व्यापार और इण्डस्ट्री को तनिक भी हानि नहीं हो सकती। आज शाम को मजे से जेकॅब सर्कल के धोबी अपने तालाब पर कपड़े धोते रहेंगे, अपना दैनिक वेतन भी पायेंगे और यूनिवर्सल ट्रेडिंग कारपोरेशन के तीन सौ नकली 'धोबी' जुलूस बनायेंगे और गला फाड़ कर नारे लगायेंगे।

मेरे मन ने कहा—"कुछ भी हो, यह अनैतिक है !"

मैंने उसे समझाया—"अरे मूरख, तू आजीवन ऐसा ही रहेगा ! इससे बड़ी नैतिकता और कहाँ मिलेगी ? मतलब तो 'काम' से है। जब सिनेमा-फ़िल्म और नाटक में एक आदमी—स्टार या एक्स्ट्रा नकली अभिनय कर सकता है (और दुनिया उसे भीड़ में धक्के खाकर, पैसे देकर, मजे से देखती है) तो यूनिवर्सल ट्रेडिंग कारपोरेशन के कलाकार अपनी कला क्यों नहीं दिखला सकते ? लोगों को तो मुफ्त के जुलूस देखने और नारे सुनने से मतलब है ! और मूढ़मति मन ! आज के जमाने में अपने लिए भी अपना सारा कामकाज कौन करता है ? हम कानूनी अनुभवों का भार अपने सिर पर नहीं ढोना चाहते, इसलिए वकील रखते हैं। अदालत में अपने ऐवज, अपने मुख्तार को भेजते हैं। हरेक जगह और हरेक वक्त, प्रतिनिधि का उपयोग है, तो भला, जुलूसों ने ही क्या

बिगाड़ा है, कि उन्हें प्रतिनिधियों और मुख्तारों का सहयोग-अधिकार न मिले।"

इसके बाद हम आनन्द जी का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा कर लौट आये।

दिन भर मैं बेचैन रहा। मन इस प्रकार बिखरा कि फिर हाथ न आया। रात में सोने का प्रयत्न किया पर नींद बिछुड़ी रही। ज्यों त्यों कर आंख लगी तो चीख पुकार सुन कर चौंक उठा। अधनंगी एक स्त्री; फटेहाल, अत्यन्त दयनीय दशा में दौड़ती मेरी ओर चली आ रही थी—"बचाओ, मुझे बचाओ! इस डायन बेईमानी ने मेरा सर्वस्व छीन लिया है और अब मेरा गला घोंटना चाहती है। जाने कब से मेरा पीछा कर रही है। ...यह!"

मुझे दया आयी—"डरो नहीं! तुम कौन हो?"

"मैं...मैं...तो, अपना ही नाम भूल गयी...दरअसल, भुखमरी ने मेरा बुरा हाल कर रखा है...मैं...मैं 'ईमानदारी' हूँ।"...

तुरन्त ही पीछा, करने वाली औरत, जो बढ़िया कपड़ों में सजी-बसी थी, कहने लगी—"नमस्ते जी! महाशय, आप ही फैसला कीजिये! 'ईमानदारी' यह कैसे हो सकती है? यह तो 'बेइमानी' है! यह नंगी-भद्दी औरत! जिसे तन-बदन ढँकने का शऊर नहीं। बिना अच्छे कपड़े पहने, कोई ईमानदार कहला सकता है? भला, आप तो, समझदार हैं, आप ही न्याय कीजिये!"

अधनंगी स्त्री मेरे पैरों में पड़ी फूट-फूट कर रो रही थी। और सजी-बसी सुन्दरी मेरा हाथ पकड़ कर मुस्करा रही थी—"डीयर, चलो सैर करेंगे, ज़रा एक बार अपने मुँह से तो कहो, "डार्लिङ्ग ईमानदारी!"

और मेरी आँखों में आँखें डाल कर, वह खिलखिला पड़ी।

मैंने सोचा, मैं—मनुष्य, जैसे इसे युग-युगों से जानता हूँ। जनम-जनम की इससे साठगाँठ है!

● ●

२ बंद कमरा

कल दोपहर से यहां आए हैं और इस कमरे में अपना डेरा डाला है। कमरा चौड़ा, बड़ा और लम्बा है, यदि इसे, यह सारा असबाब निकाल कर देखें। वैसे स्प्रिंगदार पलंग, रेडियो, कैरम, खिलौने, किताबें और स्टोव का परिवार सबने मिलकर इस कमरे को बाँट लिया है, बिना किसी बखेड़े और खून-खराबी के। मनुष्य दूसरे मनुष्य को स्थान देने में कितना सोचता और हिचकता है ? लेकिन, ये अचेतन, निर्जीव पदार्थ सबको साथ लिए हैं। उतनी ही जगह हरेक ने ली है, जितनी उसके लिए पर्याप्त है। किन्तु, आदमी ? वह इनसे गया-बीता। सरिता के इस गधे नामक खिलौने से भी हेय।

सरिता दूध पीकर सो गई है। रोते-रोते फर्श पर औंधी हो गई है। बड़ी चपल और बेकरार बेबी है। ठीक भाभी जैसी। भाभी पलंग पर अधलेटी, भविष्य के किसी सपने में—भरी-पूरी गृहस्थी के मायामय सपने में उलझी हैं शायद। वरना, उन्हें किस बात की कमी ? गोद भर-पूर भरी है। जब पुत्र चाहती हैं, पुत्र प्राप्त होता है, पुत्री की कामना करती हैं, पुत्री प्रकट होती है। यही तो ईश्वर की लीला और अपना-अपना भाग्य है।

भाभी की हल्की बादामी साड़ी पर रेखा की नजर पड़ी, पैरों पर वह ऊपर चढ़ गई थी और उनकी गौर, सुचिक्कन, रेशमी पिंडलियां, मेंहदी-रंजित पगतलियां—रेखा को लगा, उन्हें छाती से चिपटा कर पड़ी रहे।

'मोह न नारि, नारि के रूपा'—भाभी इस पंक्ति की मर्यादा से

परे हैं। इनके रूप और लावण्य पर कोई भी नारी वारी जाएगी।

हां, इनकी सौत भले......अप्रत्याशित, संभावित सौत भले......

रेखा ने अपनी ईज़ी चेयर से, जहां वह बैठी थी, भाभी पर डालने को नज़र ऐसे-ऐसे, धीरे-धीरे उठाई, मानो उसके भार से भाभी जग न जाए। और यह बात तो छिपी नहीं है, कम से कम हम भाई-बहनों पर, कि भाभी ने भैया को बनाया है। ये ही उनकी गुरु, 'नारी, मां सहचरी-प्राण' हैं। नारी के सभी स्वरूपों की साकार, पूर्ण इकाई हैं। भैया के समस्त अभावों की पूर्ति हैं।

नीलू नीचे दरी पर, उकडूं बैठी 'धर्मयुग' और 'माया' के पन्ने उलट रही है। उसकी दाहिनी कोहनी के नीचे 'फ़ार्गेट मी नाट' वाला तकिया रखा है और गोरी कलाइयों पर पिन से लगी चूड़ियां और एक सस्ती, रुपहरी रिस्टवाच है। यदि कोई टाइम पूछता है, तो बड़ी प्रसन्नता से तत्काल वह टाइम बताती है और इस प्रकार सब पर अपनी घड़ी के महत्त्व की छाया छोड़ना चाहती है। दूसरे से समय पूछा जाने पर भी वह बीच में ही फुदकती है। फुदकना इस नीलू की पुरानी आदत है, शेष सब इसमें ठीक है और न भी हुआ, तो, पैर में, पेट में बेड़ी पड़ जाने पर सब ठीक हो जाएगा......रेखा के मन में बिटरनेस आयी और जैसे उसका स्वाद मुख में भर आया हो, उसने बड़ी कोशिश से थूक का घूंट निगल लिया। फिर ईज़ी चेयर से पलंग पर आ गई।

स्टोव के निकट बैठी मां, दूध गरम कर रही थीं और अब उनके एक हाथ में माला और दूसरे में परिवार के काम आने वाली किसी भी उपयोगी, आवश्यक या अनावश्यक वस्तु के संग्रह की तैयारी और तत्परता है। पिछले दिनों उनकी देह में स्थूलता आ गई है और चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई हैं, और दांत सामने के दांत गायब हो गए हैं। रेखा ने सोचा—जब बच्चे छोटे होते हैं पैरेन्ट जवान और शौकीन होते हैं, पर जब बच्चे तरुण और बड़े हो जाते हैं, मां-बाप अव्यवस्थित और सीधे-सादे क्यों हो जाते हैं—कुछ भी पहन लेने वाले और कुछ भी खा लेने वाले ?

सरिता क्या जाने कि उसकी दादी भी एक दिन बन-ठन कर सिनेमा जाती थी और दादा उसका हाथ थामे सेर करते थे ?

उसने मां की ओर कनखियों से देखा—यौवन जब आया होगा यह कैसी रही होगी, आम्रमंजरी सी यह......! संभव है, पिताजी से दूर रही हो ब्याह के बाद। और दोनों के बीच प्रेम और मनुहार का पत्र-व्यवहार चलता हो। 'मेरे राजा'........ 'मेरी रानी'........और शायद उस ज़माने में लिखते हों 'प्राणप्रिय'.......'प्राणनाथ' 'चरणों की दासी' ......युग बीत गए, तब की दासी आज की रानी से ज्यादा सुखी थी। लाइफ़ इतनी काम्पलेक्स नहीं थी। जीवन इतना दूभर नहीं था। माइन्ड हरवक्त ऐसे टेन्शन में नहीं रहता था। एक करवट लेटे-लेटे पसली दुखने लगी, उसने करवट बदली। पलंग की कोई स्प्रिंग ढीली है सो शोर करती है...... चीं चीं ! रेखा को यह अच्छा नहीं लगता, शर्म आती है, जब वे थे, तब तो उसने इस स्प्रिंग के मुँह में रुई ठूंसकर एक पुराना ब्लाउज़ बांध दिया था, पर अब नीलू ने खटमलों की खोज में वह कपड़ा निकाल फेंका है और स्प्रिंग फिर आज़ाद हो कर बदला ले रही है और इतने दिन जो चुप रही सो मुखर और वाचाल हो उठी है और मां ने उसकी करवट को बेचैनी मान कर पूछा—'बेटी, कोई तकलीफ......?'

रेखा ने सिर्फ सिर हिला दिया। उसे बार-बार बोलना अच्छा नहीं लगता और आदमी जितना बूढ़ा होता है, ज्यादा बोलता है; अथवा जितने बूढ़े हैं वे सब ज्यादा बोलते हैं, सिर खपाते हैं। मुझे कोई तकलीफ नहीं, हुई तो बता दूँगी। दुधमुँही बच्ची मैं नहीं। किन्तु मां सोचती है—लजाती होगी, इसमें लज्जा की क्या बात—?....

श्याम अपनी खटिया से उठ रहा है। रेखा चुपचाप उसकी क्रियाएं देख रही है। कमीज़ के बटन खुले हैं और यह शैतान कभी एक रंग के बटन नहीं रखता। कितने भद्दे लगते हैं बिरंगे बटन ? लोग क्या कहते होंगे ? बैरिस्टर का बेटा और ऐसा बेतरतीब ? एटिकेट इसे छू भी नहीं गया। कुछ भी डिसेन्सी नहीं, पर रेखा उससे दृष्टि न हटा सकी। यह आखिर ऐसा क्यों है—शायद जब गर्भ में होगा, मां ने किसी

माली-मजूर की शक्ल देखी होगी, तभी न ऐसा है। उस दिन रमेश को खत लिखा था, ड्राअर में से उड़ा ले गया। खैर, वह तो साधारण पत्र था, लेकिन, कहीं 'ऐसी-वैसी' बात होती और किसी के हाथ लग जाता ......? काला मुँह करना पड़ता। मैं तो कहीं भाग जाती......भाग कर कहां जाती? बम्बई, अपनी बम्बई, और कहाँ? वही इतनी बड़ी नगरी है कि सबको हरवक्त शरण है...लो, अब उठे हैं शहजादे! मुफ्त का खाकर मटरगश्ती करता है...हॉकी खेलता है, हॉकी से पेट भर जाएगा? और छोकरियां......छोकरियों को ख़त लिखता ही होगा। अब तो सब समझता है। आजकल के ये लौंडे तो होली के फूल हैं। भाभी ने बिगाड़ा है इसे......भाभी ने।

श्याम ने अपनी खटिया, जिसे वह 'मयूर सिंहासन' कहता है, एक पैर से उछाल खड़ी कर दी और बोला—'कितना बजा है?'

—लो, बजने से इसे क्या काम? जैसे, लाट साहब को पेशी करने जाना है कहीं!

'पौने पांच'! नीलू ने 'धर्मयुग' के विवाहित दम्पतियों की तस्वीरों से दृष्टि हटा कर कहा। उन चित्रों के प्रत्येक दूल्हे को वह नम्बर दे रही थी। नाक, कान, आँख, लम्बाई, सीना, व्यक्तित्व और जनरल इम्प्रेशन के अलग-अलग खाने एक कागज़ पर उसने बनाए थे और अब उन्हें भर रही थी। श्याम बोला—'अरे, मैं तो समझा था, दूसरा दिन हो गया! सपना आ रहा था मुझे......जीजी के पिल्ला जन्मा है।' फिर छिपी नज़रों से रेखा को देखा कि मूड कैसा है, वह आगे बढ़ा—'ठीक पिल्ला? छोटे चूहे जैसी आँखें और नाक? उल्लू जैसा मुँह और गधे जैसे कान ....।'

मां चिमटा फेंकती है। रेखा को संतोष हुआ। शैतान बच गया।

'मदारी'—उसने श्याम को बुलाया। श्याम को; वह और घर के सभी, सम्बोधन में नया नाम देते हैं।

'ये इन्जेक्शन ले आ'—उसने डॉक्टर का लिखा पर्चा श्याम के

हाथ में दे दिया। वह अटेन्शन में खड़ा था, अब 'जी' कहकर सेल्यूट की और अबाउटटर्न हुआ, 'क्वीक मार्च' कहा और बजाय मार्च के, एक ही छलांग में नीलू के सिर को छूता हुआ भाभी के पलंग पर। भाभी हड़-बड़ कर जग गयीं। वह भाग गया !

रेखा ने समझा—नटखट है तो क्या हुआ, बालक है, बड़ा हो कर ठीक हो जाएगा। कितना मुस्तैद ! जिधर कहो, दौड़ जाएगा ! उसे काम करने वाले बच्चे अच्छे लगते हैं, आखिर यह उसका भाई है। अगर बीच में गुस्ताखी न की तो इस बार पास होने पर वह उसे कोई अच्छी चीज़ देगी।... ...

भाभी का मुन्ना रोने लगा। रेखा को उसका रोना अच्छा नहीं लगता, इसलिए, ऐसा लगा जैसे वह सदियों से रो रहा है और भाभी को उसके रोने की कोई परवाह नहीं, वह इसे साधारण रुटिन में लेती हैं और अब भी नीलू से गप्प लड़ाने में उलझी हैं। रेखा कई दिन से मार्क कर रही है, नीलू सेक्स की कहानियों और घटनाओं में रस ले रही है।

भाभी ने अपनी नीली, कजरारी आंखें उठाईं। एक छोटी अंग-ड़ाई ली। साड़ी सरक कर नीचे आ गई। और रेखा ने देखा—सामने से ब्लाउज़ दूध की बूंदों से भीगा है और उस पर गोल, गीला धब्बा आ गया है। बगलों में पसीने से कपड़े का रंग छूट कर हल्का-मैला पड़ गया है।

और भाभी कुछ पूछ रही हैं।

'क्या मुझे कह रही हो ?'

'जी !'

रेखा को यह 'जी' अच्छा लगता है। भाभी का यह छोटा-सा 'जी !' कितना मधुर और तर ! यह जब से आयीं, छोटे-बड़े सबको जी कहती रही हैं।

'तबीयत कैसी है ?' भाभी के हंस-पंख से दांत झलके।

रेखा ने सिर से संकेत किया और हौले मुस्कराई। भाभी—

मातृत्व की यह प्रतिमा ! कितनी सम्पन्न और सुखी है। कहीं कोई बाधा नहीं, कहीं कोई अवरोध नहीं। जैसे जीवन एक सीधा, लम्बा मार्ग है और यह उस पर निर्भय चली जा रही हैं। आखिर, ऐसा क्यों ? शायद इसलिए कि यह केवल देना जानती हैं। अगर इनमें चेतना है, यह अपने प्रति सचेतन हैं तो केवल इतनी ही कि मुझे देना है। समर्पण—सर्वस्व-दान ही इस नारी का आदर्श है। लेकिन इसकी अपनी इंटिग्रीटी, पर्स-नलिटी और इसके राइट्स कहां ? यह तो मूर्त होते हुए भी अस्तित्व-हीन है !

टी सेट की खट्-खट् हुई। सब दरी पर आ डटे हैं। नीलू उर्दू शायरों की तरह बैठी है। सरिता और मुन्नू को जगह मिल गई है।

सोच-विचार, कल्पना और तस्वीरें ! स्कूल में रेखा को कभी तसवीर बनाना नहीं आया, पर आज वह किसी भी स्मृति-आकृति को आँखों के आगे प्रत्यक्ष देख सकती है, उसके पेट में हल्की सी हलचल हुई, उसने होंठ सटा लिए और उस पीर को सह लिया, जिसे मां के शब्दों में—'बच्चा लात फेंक रहा है'—कहते हैं।

और इस लात मारने वाले को औरत गले लगाती है ! इस रस-चूसने वाले को दूध पिलाती है। वह भी दूध पिलाएगी। पिछले दिनों से उसका जी दूध पिलाने को बेचैन हो उठता है। स्तन दूध से भर आए हैं। उनका आकार, गोलाई, मोटाई, स्वरूप बढ़ गया है। ब्लाउज़ सभी छोटे पड़ गए हैं ......।

थर्ड ईयर में जब वह थी, कॉलेज में उसने कितना सोचा था—स्वरूप-जैसा नन्हा मिले। लेकिन, इसके लिए ब्याह करना वह नहीं चाहती थी। पुरुष के अहम् के साथ अपना अस्तित्व लय करना, उसे अमानवीय लगा। उसे यह अच्छा नहीं लगता था कि सृजन के लिए समर्पण-साधना करनी पड़ती है और अपना रूप-स्वरूप, सर्वस्व, देना पड़ता है, परन्तु, उसे यह सोचकर सन्तोष है और लड़कियां कहती हैं कि बच्चा होने पर रूप निखर आता है और बॉडी ज्यादा सिमेट्रिकल हो जाती है। चलो, यही एक्स्पेरिमेंट सही ! स्वरूप की तो सारी

ज़िन्दगी प्रयोगों में गई। कहीं मुझसे भी एक्सपेरिमेन्ट करके वह न चला गया!

नहीं, वह रमेश-जैसा नहीं है।...

नहीं, वह रमेश-जैसा नहीं है। स्वरूप के बारे में सोचना रेखा को सुहाता है। कुछ ही दिन और हैं, और वह लौट आएगा। वह फिर से उसे अपनी बाहुओं में भर लेगी और वह छोटा पड़ जाएगा, इन भुजाओं की परिधि में...नन्हे-मुन्ने-सा!

......वह रेखा है......अन्त हीन सरल रेखा। पुत्र और पति के दो बिन्दुओं के बीच खींची हुई सरल रेखा। अपने को वह नहीं बांध सकती, रोक नहीं सकती। निरन्तर चलते-रहना उसका काम है। तो, स्वरूप आएगा। उसकी गोद में सिर रखे वह सो जाएगी, कितना अनन्त सुख है! उसने आंखें बन्द कर लीं......और, पेट में फिर प्रकम्पन हुआ। स्वरूप का यह वरदान क्या फिर लात मार रहा है? बड़ा नटखट है। चेहरा उसी जैसा है, नाक भी वही है! रेखा के अधरों पर आनन्द और तृप्ति की अमर मुस्कान छा गई। प्रकृत जीवन एक डॉटेड् लाइन है, जिस पर चलना ही पड़ता है। कल वह बालिका थी। कॉलेज तक कुमारी थी। विवाह हुआ। पत्नी बनी। अब मां बनेगी। मां! यह शब्द कितना मोहक और सरल है! उसके कानों में 'मां-मां' तुतलाते नन्हे का रुदन-क्रन्दन छा गया। देही सुख से सराबोर, रस से भीग गई!.. मां! किन्तु वर्जिनिटी का उसका गर्व? कौमार्य से मातृत्व क्या कम है? कहां कंचन का कोरा कलश, कहां मिट्टी की छलाछल प्याली! लेकिन, इंग्लैंड से स्वरूप कोई लड़की उठा लाया तो? कोई मेम? अपनी डिग्री और साहिबी की अकड़ में मेम का मोह वह छोड़ सकेगा? तब तो, मैं भी क्या कम हूँ? अपने हाथों दोनों का गला घोंट दूंगी। स्वरूप का अभी रेखा से पाला नहीं पड़ा है। रमेश को ही पूछो, क्या हाल हुआ था बच्चू? प्रतिरोध की सफलता देखकर रेखा फिर मुस्करा दी। भाभी पायताने खड़ी हँस रही है—यह उसने अब देखा। अपनी लज्जा छिपाने को रेखा पूछती है—'समय?'

'साढ़े छह'—नीलू ने, यह जानकर भी कि भाभी के पास अपनी वाच है, दूर से घोषणा की।

श्याम लौट आया है और पूछ रहा है—'भाभी, यह इन्जेक्शन कहां रखूं ? माँ, यह दवा कहां रखूं ?'

इतने बड़े कमरे में उसे एक छोटा-सा पैकेट रखने की जगह नहीं सूझती ! लेकिन, वह इस प्रकार चिल्लाए नहीं, तो लोगों को कैसे मालूम हो कि उसने एक सेवा-कार्य किया है और घर वालों पर एहसान किया है, उनके स्वर्गस्थ पूर्वजों और गर्भस्थ अग्रजों पर उपकार किया है।

'जीजी, मैं तो उसका नाम रूप रखूँगा। देखो—रेखा, रूप, स्वरूप ! कितना अच्छा ट्राइएंगल है !'

भाभी बोली—'नहीं, नीलू तो कई दिन से डिक्शनरी छान कर शब्द चुन रही है। उसकी लिस्ट पेश होने दो।'

अपने श्रम को विफल होते देख, श्याम क्रोध से नीलू की तरफ निहार, बिल्ली की तरह मुँह बना रहा है। भाभी हँस रही है। समय जा रहा है। दुनिया बढ़ रही है और रेखा लड़ रही है, किसी को जन्म देने के लिए ! और भाभी अब भी हँस रही है, जैसे प्रजनन इनके लिए हँसी या खेल है ! ज्यों-ज्यों इनकी संतति-संख्या बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों इनकी हँसी भी बढ़ती जाती है। रेखा इस रहस्य की कुन्जी पा लेना चाहती है।

बाहर बहुत शोर हो रहा है। 'शहन्शाह' फिल्म आई है। तांगे में बैठा बहुरूपिया एनाउन्सर पर्चे बांट रहा है और लाउडस्पीकर पर बोल रहा है। नीलू और श्याम अपने इस फरिश्ते की वाणी सुनकर गायब हो गए हैं ! 'शहन्शाह के पोस्टर पर कामिनी-कौशल कैसी लेटी है ? ठीक तुम्हारी तरह'—भाभी ने रेखा से पूछा, धीरे, कि मां जी न सुन लें।

परन्तु अब रेखा स्वयं नहीं सुन रही है, उसकी सुध जा रही है।

यों······यह आंखों आगे धुँधलका कैसा ?······उसके कानों में झन्-झन् क्यों हो रहा है ? पेट में······पेट में...?

'कै होगी ?' भाभी पूछ रही है। पेट सहला रही है। और ये पैर तो भारी हो गए हैं। देह निस्पन्द पड़ी है।

दर्द-दर्द-दर्द !

नाक से नख तक कँपकँपी व्याप्त है। एक ठंडी लहर।

मौत-मौत-मौत !

रेखा की छाती धड़क रही है। जीवन सचमुच क्षणभंगुर है········ जीवन ! ईश्वर, कुछ दिन और जीवन दे...!

रेखा की आंखों में आंसू भर आए हैं। अब वह और होठों को बन्द नहीं रख सकती। अब वह और दांतों को सटाए नहीं रख सकती। खत्म···जैसे सब खत्म हो रहा हैं। जब मर्यादाएं लोप हो रही हैं, लाज कैसी ? सृष्टि के साथ प्रलय···प्रलय के साथ सृष्टि···! ओह !

मां दौड़ आई है। रेखा पैर पटक रही है। पछाड़ें खा रही है। केश बिखरे हैं। कपड़े बिखरे हैं। देह अस्त-व्यस्त है···जीवन और मरण अस्त-व्यस्त-से हाथ बांधे सामने खड़े हैं।

'अरी मां, मैं मरी'—वह चीख रही है, चिल्ला रही है।

भाभी ने भीतर आते नीलू-श्याम को बाहर रोक दिया है। मुन्ना और सरिता को निकाल दिया है। चिटखनी चढ़ा दी है।

'मैं नहीं जानती थी···मां, मां···।'

फिर जैसे दर्द रफा हो गया वेदना सो गयी और पीड़ा निष्प्राण हो गयी ! रेखा अचल और मौन पड़ी है।

श्याम बाहर से दरवाजा खटखटा रहा है, इतने जोर से कि तोड़ डालेगा।

नीलू वेंटिलेटर से झांक रही थी। भाभी ने उसे देखा और नैन-सैन से बरज कर भगा दिया।

एक जोर की चीत्कार हुई और विधाता का चेहरा चमक उठा।

मां ने नाती को झेल लिया। 7959

भाभी थाली बजाने लगी।

'रोना बच्चे का है, लगा शर्त !' श्याम नीलू से बाजी बद रहा है।

'क्या हुआ ? क्या हुआ ? वकीलानी माँ'—बाहर पड़ोसिनें जमा हो रही हैं।

लेडी डॉक्टर की कार स्टार्ट हो गई है। उसके बड़े बेग में नन्हा है। नीलू सरिता को समझा रही है।

और अब—जब स्वप्न साकार हो गया, रेखा की पलकें बंद हैं। ईश्वर के दिए शैतान को देख लेने का, जैसे, उसका साहस बुझ गया है। सांस ज़ोर-ज़ोर से चल रही है।

और भाभी खुश हैं, बहुत खुश हैं, मानो दुनिया में आते हरेक बच्चे के साथ उनकी हँसी-खुशी भी बढ़ती जाती है।

नीलू और श्याम का घोर विवाद झगड़े में बदल गया है कि नाम 'हिटलर' रहेगा या 'सुभाष ?'

चूँकि उसमें दूध की नहरें बह रही हैं, चूँकि उसमें मातृत्व का अनमोल धन है, चूँकि उसमें भावी भारत का साकार स्वप्न कुहुक रहा है—कमरा बंद है और अभी एक महीने तक बंद रहेगा !

• •

३ नारायण का न्याय

वामन महादेव कुलकर्णी स्वर्ग के अपने केबिन में बैठा माला जप रहा था। और जैसी कि प्रत्येक तपस्वी की प्रकृति होती है, माला फेरते-फेरते वह भी अपने अतीत और वर्तमान का स्मरण कर रहा था:—

"श्रीराम समर्थ....जय राम, राम, राम,....मैंने गिरगांव में पुस्तकालय स्थापित किया, दादर में सार्वजनिक औषधालय बनवाया.... हे राम, नारायण-वासुदेव....राम....अपनी बेटी के बेटे को पढ़ने के लिए विलायत भेजा, भांजे को दान देना बहुत बड़ा धर्म बतलाया गया है.... हे राम, जय राम....कृष्ण-कृष्ण....श्याम-श्याम....मैंने अनेक गरीब विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप दी, अगर कोई हिसाब देखे तो मालूम हो कितना रुपया दान दिया, लगभग चार लाख चौबीस हज़ार....तभी तो भगवान ने मुझे यहाँ स्वर्ग में इसी हिसाब से यह कोठरी, चार लाख चौबीस हज़ार नम्बर की दी है। पंडित, महाराज पुजारी जी ठीक कहते थे, भगवान के यहाँ पूरा-पूरा न्याय है, इस हाथ दे, उस हाथ ले। कितना सुन्दर स्थान है, कैसी बढ़िया शैया मिली है मुझे! लेकिन इस पर रेशमी तकिया नहीं है, बड़ा-सा एक तकिया और होता तो उसके सहारे, जरा तिरछा लेट कर, मज़े से माला फेरता रहता। बेचारी मेरी पत्नी, विष्णु की माँ, शिवाजी पार्क की अपनी इमारत में, बेकार मेरे लिए बिसूरती होगी! उसे क्या मालूम मैं यहाँ कितने आराम में हूं! राम के पास दुख-दर्द-दुविधा का क्या काम? जय-जय राम-सिया, श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी, जय-जय श्री हनुमान की! धीरे रे उठाओ मेरी

पालकी ! मैं हूँ सोहागन गोपाल की ! वाह रे ! मैं वामन महादेव कुलकर्णी, आज तो वैकुण्ठ के अखबारों में मेरा नाम छप गया।....अब तो शीघ्र ही यहाँ की नगरपालिका के चुनाव में खड़ा हो जाऊंगा और अधिक से अधिक वोट पाऊँगा। लेकिन, शिव-शिव, राम-राम, मुझमें यह अभिमान क्यों जाग्रत हो गया ? यह गर्व-गुमान तो सबसे बड़ा पाप है, छिः छिः मैंने यह क्या किया ?....राम-राम ! क्षमा करो प्रभो, मैं तो महा पापी, अधम, नीच जीव हूँ, बस एक तेरी दया का ही सहारा है.... आज तो बारम्बार अपशकुन हो रहे हैं, बाँई आँख फड़क रही है, युधिष्ठरजी पांडव का यह बूढ़ा श्वान बड़ी भोर से रो रहा है ....राम.... रमापति, राम नाम की जय हो, नर-नारी निर्भय हो, राम...राम-राम !"

और वामन महादेव का स्वर तीव्र और तीव्रतर होता गया, यहाँ तक कि उसे अपने दरवाजे की थपकी भी सुनाई न दी।

जब थपकी जोर से पड़ी तो वामन महादेव कुलकर्णी अपनी जपावस्था से चौंक कर उठ-खड़ा हो गया—"कौन है भाई ? ठहरो, अभी खोलता हूँ। उसने अपनी धोती ठीक कर, द्वार खोल दिया। जय राम !"

"मैं, वैकुण्ठ का थानेदार, पांडुरंग सदाशिव भेड़े हूँ। आपको पतितपावन, भक्तमनभावन, करुणानिधान, आनंदकंद ने बुलवाया है। आज यमराज के यहाँ विशेष बैठक है, कई अपराधियों और पापियों का फैसला होगा, इस कार्य में आपकी उपस्थिति और साक्षी आवश्यक है। जय राम !"

"वाह साहब, यह तो अपना ही काम है। अभी चलता हूँ। सत्ताईस हज़ार सात सौ सात नंबर की लान्ड्री में मेरा नया कुरता धुलने गया था, आप जरा अपने इस साथी को भेज कर, मँगवा दीजिये, तब तक मैं तैयार होता हूँ।"

"अवश्य, यह कौन-सी बड़ी बात है।"

आन की आन में वामन महादेव कुलकर्णी सजधज कर, थानेदार पांडुरंग सदाशिव भेड़े के साथ हो गया। आटोमैटिक लिफ्ट में बैठ कर, तीनों व्यक्ति बढ़े। लेकिन इस समय भी वामन महादेव का मन शांत न

था। उसने सोचा, अवश्य परिवार में कहीं किसी ने कोई पाप किया है कि उसका ताप यहाँ तक पहुँच रहा है, अपशकुन हो रहे हैं और मेरा मन स्वाभाविक स्थिति छोड़ कर, केंद्र से विमुख हो रहा है। 'राम-राम' का जप करता हुआ, वह आनंदकंद के राजद्वार तक आया।

राजद्वार पर मृत्युलोक से हाल ही में आए पुण्यात्माओं और पापात्माओं की भीड़ लगी थी। पुण्यात्मा-धर्मात्मा जन सोने की पालकियों में बैठे, मखमल के तकियों के सहारे मजे से लेटे थे। रत्नदीप जल रहे थे। पापात्मा स्वर्ग के फुटपाथों पर पड़े-पड़े कराह रहे थे, इनमें वामन महादेव के जाने-पहचाने कई चेहरे थे—कई ठेकेदार, मालदार, साहूकार इनमें थे। पगड़ी लेने वाले, माल में मिलावट करने वाले, कम तोलने वाले, बात-बात में झूठ बोलने वाले, तरह तरह के दुष्ट और व्यभिचारी थे। कालिजों के कामचोर प्रोफेसर, परीक्षा की कॉपी जाँचने और रिश्वत लेकर लड़कों को पास करने वाले परीक्षक भी थे। सभी तरह के नर-नारी थे। उस भीड़ से बचता-बचता वामन महादेव कुलकर्णी 'राम-राम' जपता हुआ, आगे बढ़ रहा था। अन्त में वह देव-दरबार में आया और अपने लिए रिजर्व तेईस करोड़, साठ लाख, तिहत्तर हजार, तीन सौ वीं कुर्सी पर बड़े ठाठ से बैठ गया।

फिर लक्ष्मीजी के साथ नारायण पधारे। उनके आगे-आगे प्रसिद्ध प्लेबेक सिंगर गाना गा रहे थे और पंडितजन श्लोक पढ़ रहे थे। आगे, यमदूत, थानेदार, चोबदार और अङ्गरक्षक थे। पीछे यमराज की पालकी आई और सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ।

स्वर्णदंडधारी एक दूत ने जोर से पुकारा—"विष्णु वामन कुलकर्णी हाजिर है? विष्णु वामन।...."

यह नाम सुनते ही वामन महादेव अपने जप-जाप से चौंका। और उसने देखा—उसका अपना लाड़ला बेटा, बम्बई युनिवर्सिटी का ग्रेज्युएट, विष्णु वामन कुलकर्णी सभा में लाया जा रहा है। यमदूतों ने उसके हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डाल रखी हैं और उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है।

अपने पुत्र की यह दुर्दशा देखकर, वामन महादेव का रोम-रोम दुख से जलने लगा।

पुत्र के मोह में विकल, वामन तत्काल खड़ा हो गया और दौड़ कर नारायण के चरणों में गिर पड़ा—"भगवन्, मैंने आजीवन धर्म-पुण्य किया, दान दिया और जप-तप किया। और मेरे ही बेटे की यह दुर्दशा ?"

"दूर हटाओ इसे"...... यमराज ने गरज कर कहा। दूतों ने दौड़-कर वामन महादेव को नारायण के सिंहासन से परे कर दिया, वामन ने लक्ष्मीजी की ओर देखा, शायद उन्हें ही दया आ जाए, परन्तु लक्ष्मीजी शेर के नए बच्चे से खेल रही थीं और अपने खेल में मगन थीं।

तब नारायण ने यमराज की ओर देखा और पूछा—"यमराजजी, क्या बात है, विष्णु तो बड़ा अच्छा लड़का था, इसे यहां कौन पकड़ लाया ?"

नारायण के इस कथन से, वामन महादेव को हिम्मत बँधी और उसने फिर से अपने आसन से उठकर कहा—"महाराज, अभी तो इसकी उम्र ही क्या थी, अभी तो खेलने-खाने के दिन थे...हाय, इसकी मां बेचारी तड़प-तड़प कर जान दे देगी !"

इस पर यमराज बोले—"वामन महादेव कुलकर्णी ! दुखी न होइए। आज तक नारायण के इस वैकुंठ-लोक में और हमारे दरबार में, किसी के साथ अन्याय नहीं हुआ है। हमें आपकी सेवाओं का पूरा-पूरा खयाल है और इसीलिए हमने आज आपको यहां बुला कर कष्ट दिया है। विष्णु वामन को कल की कचहरी ने सात बरस नरक वास का दंड दिया है। आज उसकी अपील है।"

"महाराज, धर्मराज, न्यायावतार ! मैं, अपराधी का वृद्ध पिता, कुछ कहना-पूछना चाहता हूँ !"

"जरूर पूछिए, आपका अधिकार सुरक्षित रहेगा।"

"महाराज, क्षमा करें, मेरा तो पिता का हृदय है, इसलिए अवश

पर ध्यान न दीजिएगा, विष्णु को किस अपराध में यह दंड दिया जा रहा है ?"

"वामन जी, अपराधों की तालिका तो बहुत बड़ी है, और हमारे पास इतना समय नहीं कि इस विषय में बहस कर सकें, अच्छा होगा, आप कल हमारे दफ्तर में आकर इसके अपराधों की फाइल देख लें, मैं यमलोक के दरबान के नाम एक रुक्का लिख देता हूँ।"

तब, यमराज के इच्छा करते ही बैकुंठ की अप्सरा टाइपिस्टों ने पल भर में रुक्का टाइप करके दे दिया।

यमराज ने देखा कि बूढ़ा वामन महादेव कुलकर्णी अभी भी संतुष्ट नहीं है, तो उन्होंने चित्ररथ को बुला कर कहा—"कल जिस विष्णु वामन कुलकर्णी का न्याय हुआ है, उसकी, पोस्टमार्टम की, अपने विभाग की, फाइल लाओ और परिणाम हमारी सभा को सुनाओ, ठीक है न, वामन जी अबतो आपको संतोष हुआ ?"

इस बीच सभा की कार्यवाही रुक गई। बात यों हुई कि रूस, अमरीका, भारत और जापान आदि देशों के स्वर्गस्थ रिपोर्टर, न्यूज़मेन, टेलीवीजन-संवाददाता अपने-अपने यंत्र और केमरे आदि लेकर, आ धमके, उन्होंने बारी-बारी से नए आने वालों के कई चित्र लिए और तब चाय-पान के समय, सबने जाकर लक्ष्मीजी को घेर लिया—"देवीजी, हम तो कब से आपके दर्शनों के लिए व्याकुल थे। मृत्युलोक की प्रजा यह जानने को बेचैन है कि आजकल आपके सिंहसुवन कैसे हैं ? ये मांस खाते हैं, तो बान्द्रा के स्लाटरहाउस की सप्लाय है या लखनऊ के कसाईखाने की ? और जो आदमी यानी कसाई सप्लाय करता है, उसे स्वर्ग में जगह दी जाएगी या नरक में ? यदि, मैडम, आपने उसे नरक में जगह दी, तो, लोगों का विश्वास आपकी भक्ति से उठ जाएगा और यदि स्वर्ग में बुला लिया तो अखबारों में आपकी निंदा होगी और सम्पादक-गण सर्वसमर्थ अपनी लौह-लेखनी यानी पारकरपेन से लिखेंगे कि लक्ष्मी यानी मिसेज़ नारायण ने, रिश्वत लेकर, चंद कसाइयों को अपने लोक में जगह दे दी है। फिर तो, देवीजी, आप बड़ी कठिनाई में पड़ जाएंगी।

देवशयनी एकादशी के बाद देवताओं के महानिद्रा से जगाने पर, देवसभा की संसद में आपके विरुद्ध कई प्रश्न किए जाएंगे और 'काम रोको' प्रस्ताव रख दिए जाएंगे। भूखहड़तालें होंगी और मृत्युलोक तक खबर फैल जाएगी और जगह-जगह जुलूस निकलेंगे और सभाएँ होंगी, देवी, यह तो लोक-दृष्टि है, राजकीय मामला है, यहां हाथी हड़प करने वाले भाग्यवश बच जाते हैं और आलपिन के चोर फांसी पा जाते हैं।''........

रिपोर्टरों, संवाददाताओं और केमेरामेनों के संयुक्त वार और वक्तव्य, प्रश्नावली और चित्रावली के तुषारापात से बेचारी लक्ष्मी मैडम घबरा गईं। नारायण बैठे मुस्करा रहे थे। इसी समय नारद जी आ गए। उन्हें देखकर, लक्ष्मीजी की जान में जान आई, बोली—

''बड़े अच्छे आए, नारद जी, ये देखो, ये तो, हमारी मुसीबत पर चुप बैठे खुश हो रहे हैं, आप कोई रास्ता बताइए।''

''नारायण, नारायण, रमाजी, आपके सर पर मुसीबत! भला, ऐसा कैसे हो सकता है?''

लक्ष्मी ने उत्तर में संवाददाताओं को ओर देखा, नारद जी ने भी उधर देखा और खबर फैलाने वाले अपने जातिभाइयों को देखकर प्रसन्न हुए, लक्ष्मी जी को तत्क्षण एक उपाय सूझा। उन्होंने संवाददाताओं को बुलाकर कहा—''आइए, हम लोग सोमरस की चुस्कियां लेते हुए, बात-चीत करें, हमें महिला-अप्सरा-लोक में चलना पड़ेगा, यहां रहने पर, यमराज और नारायण साहब के कार्यक्रम में बाधा पड़ेगी।''

लक्ष्मी के इस प्रस्ताव को सुनकर, रिपोर्टरों ने 'हुर्रे-हुर्रे', 'तथास्तु तथास्तु' कहा और सब लोग अपनी टोपी, हैट, छाते, केमरे, चोपड़ी, बहियां उठा कर, लक्ष्मी जी के पीछे-पीछे चले गए, आगे-आगे लक्ष्मी जी चलीं। नारद जी उनके पीछे थे।

लक्ष्मी जी के जाने पर, नारायण ने बेचैनी का अनुभव किया और सिंहासन पर इधर-उधर बैठते हुए, यमराज से कहने लगे—''धर्मराज, अब ज़रा जल्दी कीजिए, लंच का वक्त होने वाला है।''

यमराज ने यमदूत की ओर देखा, यमदूत ने यमलोक के थानेदार, पांडुरंग सदाशिव भेड़े की ओर देखा, पांडुरंग तो विष्णु वामन कुलकर्णी के स्वर्गीय पोस्टमार्टम की फाइल और रिपोर्ट लेकर, अटेन्शन में खड़ा था।

यमराज ने पांडुरंग के हाथ से फाइल ले ली और स्वयं पढ़ना शुरू किया—

"मामला : विष्णु वामन कुलकर्णी, साकिन शिवाजी पार्क, दादर, पश्चिमी मुंबई, आर्यावर्त, एशियाखंड, केस नम्बर चालीस अरब...आदि।"

"रुक क्यों गए, धर्मराज !" नारायण ने पूछा।

"भगवन् ! मामला संगीन है। अपराधी के पास धर्म के खाते में जमा कुछ भी नहीं है।"

"गो ऑन ! गो ऑन"—नारायण बोले।

सारे दर्शक और सभासद; अपराधी और न्यायकर्त्ता; ध्यान से सुनने लगे; क्योंकि, यह स्वर्ग की कान्फीडेन्शियल रिपोर्ट के प्रकाशन का पहला अवसर था, जब कि नारायण की कृपा से, अपराधी के पूर्वजों के पुण्य से अपराधी की अपील पर, बारम्बार सावधानी से विचार किया जा रहा था।

नारायण ने अपनी घड़ी की ओर देखते हुए कहा—"पढ़ो यम-राज, मेक हेस्ट् प्लीज़"....

यमराज पढ़ने लगे—

विष्णु वामन कुलकर्णी के दिल-दिमाग और देह में पाए गए तत्वों की सूची--

१. म्युनिसिपल स्कूलों की धूल—फेफड़ों में जमा—८० प्रतिशत।
२. दूध में मिला हुआ पानी—४० प्रतिशत।
३. डालडा और अन्य वनस्पति घी—३० बरस की आयु तक, सात सौ डिब्बे का असर।
४. कमरे में छिड़का गया डी० डी० टी०—पांच हजार बोतल का असर।
५. एक बार का आपरेशन, क्लोरोफार्म का प्रभाव, चालीस

श्वास ।

६. मिलों और कारखानों का धुआं—हज़ार वर्गफुट का असर ।

७. सिगरेट का धुआँ—हज़ार वर्गफुट का असर ।

८. चाय की गर्मी—एक कुएं के गरम पानी का पूरा प्रभाव ।

९. संगिनी सुन्दरियों के पाउडर और लिपस्टिक के श्वास का प्रभाव—तीन सौ डिब्बे ।

१०. सिनेमा के बन्द वातावरण का प्रभाव—पांच हज़ार टिकिट का भार ।

११. देवताओं के पवित्र धूपदीप का प्रभाव—'शून्य' यानी निल् ।

१२. सत्संग, भगवद्-भजन, नित्य-नियम—'शून्य' यानी निल् ।

१३. दंगा-फसाद, वैर-विरोध—पांच लाठी और दस गोली का असर ।

१४. दया, करुणा, क्षमा और प्रेम की भावनाओं के प्रभाव—'शून्य' यानी निल् ।

१५. क्रोध, घृणा, द्वेष, हिंसा, गर्व, अत्याचार—पांच जन्म का पाप-भार ।

१६. छत्रपति शिवाजी और लोकमान्य तिलक की पावन वाणी मराठी न बोलकर, क्लाइव और कर्ज़न की भाषा बोलने के कारण, मस्तिष्क की विकृति—अमिट प्रभाव ।

यमराज और भी बहुत-कुछ पढ़ने जा रहे थे कि वामन महादेव कुलकर्णी ने उन्हें रोक दिया—"बस कीजिए महाराज, अब नहीं सुना जाता ! अब नहीं सहा जाता !...आपने इसके लिए दंड क्या ठहराया है ?"

"सात बरस नरक-वास, पितरों को स्वर्ग में असन्तोष, गीता के अनुसार : परिवार में कुलस्त्रियों का क्षय और वर्णशंकर संतति का कुल-प्रवेश ।"

"तो दीनानाथ, कृपानिधान, मेरे बेटे के बजाय, मुझे सजा दीजिए लेकिन मेरे कुल को कष्ट न दीजिए, मैं कहीं का न रहूँगा, नारायण !"

किंतु वामन महादेव की पुकार का, नारायण के न्याय पर, कुछ

भी असर न पड़ा। उल्टे वे रुष्ट होकर कहने लगे—"वामन महादेव ! तुम्हारी, यह दीन-दशा देखकर, हमें दुख होता है कि तुम स्वर्ग में आकर भी सांसारिक माया-मोह से, 'तेरे-मेरे' और 'पिता-पुत्र' की ममता से मुक्त नहीं हुए हो ?...भला, विष्णु के बदले, हम तुम्हें दंड कैसे दे सकते हैं ? 'अपनी करनी, पार उतरनी,' तुम भूल गए क्या ? गीताजी में हमने क्या लिखा है—पापी चाहे कोई क्यों न हो, अपराधी चाहे अपना ही काका, मामा, बाबा, भाई या नाना ही क्यों न हो, उसे अपने हाथों दंड देते हुए भी, हमें हिचकना न चाहिए। हमारे न्याय-कार्य में सहयोग देने के स्थान पर, तुम तो अपराधी का ही पक्ष ले रहे हो ! उस अपराधी का कि जिसके कारण तुम्हारे मन में आज दो-एक दिनों से सद्भावों के बजाय, असद्भावों की वृद्धि हो रही है। हमारे इंटेलिजेंस्-विभाग की रिपोर्ट के अनुसार, आज भोर से ही, तुम्हारे मन में अभिमान और पाखंड के भाव बढ़ते जा रहे हैं। तुम्हें अपने दान-धर्म और सत्कर्म पर घमंड है। लेकिन तुम नहीं जानते कि सोने के हिमालयों का दान करने वाले धनी-श्रीमंत से भी गरीब-भूखी बुढ़िया का अपनी आधी रोटी में से एक टुकड़ा, एक निवाला भर, कुत्ते को दे देना, बहुत बड़ा दान है।.... अच्छा, आज की सभा विसर्जित होती है।..."

बेचारा वामन महादेव तो हक्का-बक्का रह गया। रो-रो कर नारायण के पदकमलों में लोटने लगा। उनके चरण उसने इस प्रकार पकड़ लिए कि छुड़ाए न छूटते थे। भक्त का हठ देख कर, भगवान नारायण का मन पसीज गया। उन्होंने यमराज और चित्ररथ को बुला कर कहा—

"हमारा आदेश है कि विष्णु वामन कुलकर्णी के मामले की फिर से तपास की जाए। स्वर्ग के टॉप इंटेलिजेंस्-जासूसों को भेज कर, पता लगाया जाए कि अपराधी ने क्या सचमुच कोई पुण्य-कार्य किया है ? हम उसके पिता की भावना देख कर, विशेष आज्ञा दे रहे हैं...... अच्छा, वामन महाराज ! अब पैर छोड़िए और जाकर भगवद्-भजन कीजिए....ए० डी० सी० ! मैडम लक्ष्मी कहां हैं ? उनसे कहो, लंच का

समय हो गया है।"

एक-एक करके सारे सभासद, दर्शक और द्वारपाल चले गए। रह गया एक अकेला वामन महादेव कुलकर्णी, अछताता-पछताता वह भी अपने केबिन में लौट आया, और उस दिन से उत्सुकतापूर्वक नई तारीख पेशी की राह देखने लगा। माया-मोह के, उसके मन के कई जाले कट गए थे।

एक सप्ताह बीता। देवलोक के जासूसों और गुप्तचरों ने ईथर, वायुमण्डल, वातावरण और अंतरिक्ष की सभी लहरों को छान डाला। वामन के लिए, यह एक सप्ताह एक सहस्र वर्ष के समान था। और स्वर्ग-लोक का सप्ताह तो यों भी, मृत्युलोक के एक-दो युगों से कम नहीं होता। निदान, गुप्तचरों की नई रिपोर्ट और अपील के फैसले का दिन आया।

यमलोक के द्वार खुलते ही वामन महादेव ने आज लक्ष्मी जी का पल्ला पकड़ने की सोची। पर लक्ष्मी जी आज नारायण के साथ नहीं आई थीं, क्योंकि, उनके शेरों की मौसी बिल्ली की तबीयत नासाज थी। इसके अलावा, वे अखबारनवीसों के कथन से बहुत डर गई थीं, सो, सभा का समय निकट देखकर, नॉयलोन की नई साड़ी पहने ही, सिर पर हाथ धर कर सो गई थीं।

वामन ने नारायण और यमराज को बारी-बारी से पुकार कर कहा—"दीनदयाल ! दया कीजिए, आपने अजामिल और अहिल्या का उद्धार किया है, फिर मेरे बेटे विष्णु का पाप ऐसा कौन-सा बड़ा है कि क्षमा नहीं हो सकता ! आपने गिद्ध और गणिका, शवरी और कवरी, कंस और कौरवों का कल्याण किया है..... हे प्रभो, अब आपकी करुणा का ही एकमात्र आश्रय है! मारिए! या तारिए!...राम, रमापति, राम-राम, जानकी, जय जय !"....

नारायण ने भक्तजनों और दर्शकों की ओर मुसकरा कर कहा—

"वामन महादेव, अब अपनी स्तुति रहने दो। हम तुम्हें शुभ-समाचार देंगे। तुम्हारे और कुलकर्णी के कुलवंश के सौभाग्य से हमारे इंटेलिजेंस्-विभाग को बड़ा प्रयत्न करने पर, पता चला है कि

एक दिन तुम्हारा पुत्र विष्णु वामन कुलकर्णी जब कि 'बस' की 'क्यू' में खड़ा था, रोड पर, फ्लोरा फाउंटेन पर, 'संयुक्त महाराष्ट्र' आन्दोलन का प्रचंड जुलूस निकला। जुलूस की भारी भीड़ 'जय महाराष्ट्र' का नारा लगा रही थी, जिसकी गूंज और धामक से धरती गूँजती थी और गगन गूँजता था। उस महान् उद्घोष के रंग-रस में मस्त होकर, तुम्हारे बेटे विष्णु वामन ने भी, भूलचूक में ही सही, 'जय महाराष्ट्र' कहा था और जन-कण्ठ से अपना कण्ठ मिला कर, महाराष्ट्र-जननी और जन्मभूमि की अनजाने भी, 'जय' बोली थी। इस एक पुण्य के प्रताप से विष्णु के पाप-ताप शमन होते हैं, क्यों कि जननी जन्मभूमि स्वर्ग और भगवान् से भी बड़ी और पवित्र है!....सज्जनो, हम देवलोक के सरकारी वकील चित्ररथ के विरुद्ध फैसला देते हुए, विष्णु वामन कुलकर्णी को रिहा (मुक्त) करते हैं। अच्छा, वामन महादेव, अब तो तुम खुश हुए न? 'जय महाराष्ट्र'... आज की सभा विसर्जन होती है।"

Sureshchh Sati
M. Sc (Tech.)

• •

४ कम्मो कैसे कह दे !

सन्तोष ने बाहर से ही आवाज़ दी—"कम्मो, ओ कम्मो !" और जब तक कामना बच्ची को पलने में सुलाकर उठे-उठे, तब तक दूसरी आवाज़ आई—

"कम्मो, अरी दरवाज़ा खोलो !" और सन्तोष ने ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाया।

कम्मो ने बेबी की बंद पलकों को देखा, जाते-जाते एक बार और देखा। ब्लाउज़ के बटन लगाए और सिर पर पल्लू डालकर तुरन्त वह द्वार की ओर झपटी।

कुंडी खोलकर कहा, "इतने ज़ोर से खटखटा रहे हो ? बेबी जाग जाती, तो...?"

"तो तुम्हारी मरम्मत होती।" कहते हुए सन्तोष ने कामना के कोमल कपोलों पर पर हल्की-सी एक चपत लगाई।

कामना बहुत ही मधुर ढंग से मुसकराई। उसने अपने पति को ग़ौर से देखा और उसका मन खुशी से भर गया। सन्तोष ने अपने कंधे का बर्मी थैला और हाथ का सामान मेज़ पर रखते हुए, कम्मो को फिर से देखा, मगर कम्मो लजाकर रह गई।

कम्मो का बदन भरा-भरा है। मांसल, गदराई देह, गौरवर्ण और लम्बी-चिकनी अलकें। माथे पर बड़ी-बड़ी-सी लाल बिंदी और हल्के गुलाबी कपोल—और इन सबसे अलग, उसके बड़े-बड़े कजरारे लोचन, जैसे जनम-जनम से कोई अंजन आंज कर आई है कि काजल और सुरमे की ज़रूरत नहीं है !

"क्या तृप्ति सो रही है ?"

"अभी दूध पिलाकर सुलाया है उसे," कम्मो ने सन्तोष के छोटी तिपाई पर रखे पैर पर फ्लेक्स शू के तस्मे खोलते हुए कहा।

सन्तोष ने एक हाथ मेज़ की ओर बढ़ाया और बड़ा-सा पैकेट खोलते हुए कहा,

"देखो, अपनी राजकुमारी के लिए कैसी-कैसी चीज़ें लाया हूँ !"

कम्मो उठकर मेज़ के पास आई। काठ का बड़ा-सा एक घोड़ा, रबर का हाथी, यात्री वाला हवाई जहाज़, बन्दूक चलाने वाला सिपाही और बड़े से गोल घेरे में घिरी, पटरियों पर चलने वाली रेलगाड़ी।

कम्मो बोली, "बड़े अच्छे हैं ये खिलौने। मुझे पसंद आए।"

"तो तुम भी इनसे खेला करो।"

"ऊँ-हूँ !"

"ऊँ-हूँ क्यों ? तुम भी अभी बालिका ही हो।"

"सच ?"

"क्यों नहीं। कई बार तुम्हें भी तृप्ति की तरह बहलाना पड़ता है मुझे। रूठने पर तृप्ति राज़ी हो सकती है, मगर तुम जब रूठ जाती हो, मनाए नहीं मानतीं !"

कम्मो मेज़ पर कोहनी टिकाए, उँगलियों से खिलौने खेल रही है और उसका एक पैर अधखुले चप्पल में पंजे के सहारे हिल रहा है।

सन्तोष ने नया तौलिया निकाला और कामना पानी का गिलास लेने के लिए भीतर चली गई।

तभी दरवाज़े पर बाहर काल-बेल बजी। सन्तोष ने किवाड़ खोल दिए।

कुली ने सामान नीचे रख दिया और सन्तोष ने सीढ़ियों पर चढ़ते हुए अपनी ही उम्र के एक आदमी की पीठ देखी।

"अरे भाई सन्तोष !"

सन्तोष ने आगन्तुक को पहचान लिया—

"अमर तुम !"

कुली सामान रखकर चला गया। दोनों मित्र गले मिले। अमर का हाथ पकड़ कर सन्तोष उसे बैठक में ले गया। पानी का गिलास लेकर आती हुई कम्मो देहली पर ही रुक गई। उसकी नजर अपने मेहमान पर पड़ी और पानी का गिलास तनिक छलक गया और उसकी सफेद साड़ी पर, सामने एक भीगा धब्बा पड़ गया।

"नमस्ते," उसे देखकर अमर ने कहा।

वह सोफे से उठ खड़ा हुआ। कामना ने गिलास मेज़ पर रख दिया और दोनों हाथ जोड़ कर नज़रें उठाए बिना ही खड़ी रही।

"बैठिए !" सन्तोष ने कहा और अपने जल का गिलास अमर के हाथ में दे दिया। कामना दूसरे गिलास के लिए भीतर चली गई।

उसे लौटने में जैसे देर हो गई। लौट कर, गिलास लेकर, जब आई, उसकी दोनों आँखें भीगकर सूख चुकी थीं और जल्दी में उन्हें आँचल में दबाकर पोंछने के कारण हलकी लालिमा उन पर छा गई थी।

अपने पति को पानी का गिलास देकर वह, "मैं अभी खाना बनाती हूँ।" कह कर, रसोई में चली गई। बैठक में दोनों पुरुष बातों में लीन हो गये।

सिगरेट का धुआँ उड़ता रहा। बालिका पालने में सोती रही और चूल्हा जलता रहा और अकारण ही कम्मो फूँकनी से आग को फूँकती रही। नीली आँखें धानी आँचल को भिगोती रहीं।

कुछ देर बाद दोनों मित्र, भोजन के बाद सैर के लिए चले गये। कम्मो नहीं गई। सन्तोष ने बहुतेरा समझाया। अमर ने भी आग्रह किया। दोनों ने बारी-बारी से बेबी को उठा लेने का वचन दिया; लेकिन कम्मो नहीं गई ! घर पर ही रही।

दो पुरुषों के बीच अकेली वह नारी कैसे चले ! उसने अपने मन को जवाब दिया और मन से ही पूछा।

रेलिंग पर कोहनियाँ टिका कर कामना सड़क के आवागमन को देखती रही और उसका मन विचारों की उलझनों को देखता रहा !

पलने में बालिका रोने लगी। उसने सुना, जैसे नहीं सुना। सुनकर भी नहीं सुना! सुना! या नहीं सुना! इस तरह अनमनी-सी वह पलने की ओर आई। उसके पैर भारी थे और उसका मन बहुत उदास और गमगीन था। उसकी आँखें छलाछल भरी थीं, पर पलक सूखे थे, कण्ठ अवरुद्ध था और अंग-अंग जैसे टूटकर बिखर जाना चाहता था। सारा शरीर एक दम शीतल और ठंडा था, मगर भीतर-भीतर धू-धू लपटें जल रही थीं। बालिका को कंधे पर सुला लिया। रोज तो उसे, जब वह नींद से जागती है, पलने पर झुककर चूमती है, दुलराती-हुलराती है। लोरियाँ और गीत गाती है और उमंग के मारे अंग अपने वसन में समाते नहीं और प्यार-दुलार के प्रवाह में समय की सीमाओं का भान नहीं रहता।

शायद प्रतिदिन की आदत के कारण, शायद यों ही, शायद उष्ण चुम्बन के अभाव में बालिका सहसा रोने लगी। लेकिन कम्मो ने उसे रोज की तरह थपकी नहीं दी। दोनों हाथों से उसे अपने सामने किया, और ग़ौर से उसे देखने लगी और देखकर, बिलख-बिलख कर, फूट-फूट कर रोने लगी।

धीरे-धीरे उसकी रुलाई रुकी और मन ने अपने आपको धीरज बँधाया—

'रोती है, पगली? अब रोने से क्या फायदा? और, यह सत्य झुठलाया तो नहीं जा सकता कि अमर ही तृप्ति का पिता है।' आज, यह सत्य, जिसे झूठ बनाने की कामना ने बहुत बड़ी कोशिश की, खेत में बोए हुए बीज की तरह, झूठ की मिट्टी से बहुत-बहुत ढँक देने पर भी माटी की तहों को तोड़कर बाहर निकल आया है और जैसे ज़ोर-ज़ोर से कह रहा है—'कामना ने सन्तोष को धोखा दिया है! धोखा? हाँ, धोखा ही तो! परिणीता अपने पति से छिपकर, दूसरे पुरुष की सुहागन बनती है, तो यह छल नहीं है तो और क्या है? कामना, एक बार जब कोई दुल्हिन, दुनिया की देखती आँखों, घूँघट उलट कर, मुँहजोरी के लिए सामने आ जाएगी, तो सदा के लिए उस घूँघट की शोभा नष्ट हो

जाएगी। घूँघट तब तक घूँघट है, जब तक उसकी मर्यादा का घट लज्जा से भरपूर है।...'

कम्मो ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। वह उठकर सोफे पर बैठ गई और सोफे की पीठ पर कोहनी टिकाए, सिर बाँह पर रखे, इस प्रश्न का उत्तर खोजने लगी कि—क्या मैं सन्तोष से साफ-साफ कह दूँ कि तृप्ति—यह बालिका—उसकी नहीं है। नहीं-नहीं, मैं नहीं कह सकूँगी। न कहने का निर्णय तो मैं कब से कर चुकी हूँ। मुझे तो सदैव इसी भ्रम की सचाई पर जोर देना है कि तृप्ति सन्तोष की और सिर्फ सन्तोष की बेटी है!...इससे हम दोनों के जीवन में कोई दरार नहीं पड़ेगी और सुखी गृहस्थी की भाँति भंग नहीं होगी और सुखी परिवार दुखी न होगा।......लेकिन, लेकिन अगर मैं सच-सच न कहूँ और सचाई को अपने मन के मजार में दफनाए रहूँ...और अगर किसी दूसरे ने या अमर ने ही कह दिया तो? नहीं, नहीं, अमर ऐसा नहीं कर सकता, तब तो मुझे झूठ को अपने भीतर दबाकर, अपनी आत्मा का गला घोंटकर, आजीवन एक स्वाँग रचना पड़ेगा। क्या पूरी ज़िंदगी मैं इस अभिनय को निभा सकूँगी?

अच्छा तो यही है, मैं सब कुछ कह दूँ। लेकिन सन्तोष का सहारा न रहा, तो कामना तू करेगी क्या? अमर...वह, बहुत दूर है, बहुत दूर....कुछ भी हो, एक बार पति से कह देना चाहिए।...लेकिन, कम्मो, कैसे कह दे कि मेरे सन्तोष! तृप्ति का चेहरा तुमसे नहीं, अमर से मिलता है!...

कामना मन से सन्तोष को प्यार करती है, उसे जी से चाहती है। वह सुन्दर, सुशील और सम्पन्न युवक है। कामना को उसमें कोई कमी नजर नहीं आती।...सिर्फ एक कमी, सिर्फ एक कमी...!.. सामने दर्पण में उसकी परछाई पड़ रही थी।

कामना ने परछाईं का चेहरा देखा, खुश रहने वाला वह चेहरा इस वक्त बहुत खामोश था...शायद यह चेहरा अब खामोश ही रहेगा। जब कोई चेहरा अपने दिल में किसी घटना की सचाई को दफ़न कर

लेता है, तब उसकी खुशी मर जाती है और उसे खामोश रहने पर मजबूर होना पड़ता है। लेकिन, कामना का पति है...इसलिए वह खुश रह सकती है।...पति को जी से, मन से चाहती है, इसलिए खुश रह सकती है...इस बार दर्पण की परछाईं कुछ हिली, जैसे वह कह रही थी—'कामना, सन्तोष को भले ही मन से, प्राण से, हृदय से चाहती हो, परंतु तन का क्या होगा ? तन को बुभुक्षित, उपेक्षित रखकर, क्या तुम प्राण को सन्तुष्ट, नियन्त्रित रख सकती हो ?....'

कामना कुछ न बोली।

मन और तन। मन सन्तोष के चरणों में बिछा है, लेकिन तन ? तन जैसे, कहीं मन से दूर उड़ गया है—अपने आश्रय की खोज में, अपने दाना-पानी की तलाश में। मन को प्रेम चाहिए। तन को तृप्ति चाहिए।...

"हाँ,"—दर्पण की परछाईं ने इस बार बड़े ज़ोर से सिर हिला कर कहा। "हाँ, तृप्ति के बिना, तन की तपन नहीं मिटेगी और तृप्ति तो भ्रमर ही दे सकता है। सन्तोष..."

"क्यों नहीं ?" जैसे कामना ने पूछने का साहस किया, परन्तु पूछ न सकी। फिर भी, परछाईं जैसे उसके मन का भाव जान गई। कहने लगी,

"क्यों नहीं, सो तो इसका जवाब तुम खुद अच्छी तरह जानती हो। आज उसे भुला दिया है, तो याद रखो, तुम्हें उसका स्मरण करना ही पड़ेगा। विस्मृतियों की राख डालकर सत्य स्मृति की चिंगारी को हमेशा के लिए ढँक कर नहीं रखा जा सकता। तृप्ति के बाद पुनः अतृप्ति का दौर आएगा और उस दौर में बेभान तुम फिर से किसी भ्रमर की खोज में निकल जाओगी।...हा...हा...हा !" परछाईं अट्टहास करने लगी।

कामना सहमकर छुईमुई की गठरी बनी, एकदम निर्जीव-सी बैठी रही और हथौड़े के आघात की तरह, उसके कानों में एक के बाद एक, निरन्तर शब्द ये गूँजने लगे—

"तुमने अपने प्रथम परिचय पर ही सन्तोष से विवाह किया। विवाह हुआ और नया नीड़ पाने वाली पंछिनी की भाँति तुम चहचहाने लगीं। हँसी-खुशी और आमोद-प्रमोद में दिन बीतने लगे। रस किसे कहते हैं, तुम नहीं जानती थीं। तुम नादान थीं। वासना क्या होती है, नहीं जानती थीं। तुम विलास से अपरिचित और यौवन के उद्दाम ज्वारों से बेखबर थीं। तुम तो कोरे मन का सिंगार कर, अपने आपको भुलाती थीं, लेकिन जब तन की बरसाती नदी की भीषण बाढ़ आई, मन के तट के कगार, कुछ गिर पड़े और कुछ डूब गये! यही न?...

कम्मो ने परछाईं के इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया और वह अधिक दुबक कर बैठी रही और अपने आपसे छिपने की कोशिश में सिकुड़ी रही। उसका सारा शरीर ठंडा पड़ता जा रहा था और ऐसा लग रहा था, जैसे हिमाचल की बर्फीली कन्दरा में वह बैठी है और उसके चारों ओर, ऊपर-नीचे—सर्वत्र हिम की चट्टानें अपनी शीतल मृत्यु की माया फैला रही हैं।

मगर परछाईं के मन में ज्वाला थी, वह कहती रही—

"तुमने और सन्तोष ने (यह सच है कि सन्तोष ने भी) सोचा कि तुम्हारी गृहस्थी के पलने में एक नन्हा शिशु खेले और जब पंछी दाने की खोज में, दूर दिशाओं में उड़ जाए, नीड़ में अकेली बैठी तुम अपने नन्हे से जी बहलाती रहो और लोरियाँ गाती रहो और हँसती मुसक-राती रहो!..."

"यह सच है।" इस बार साहसपूर्वक कामना ने कहा, लेकिन उसकी नजरें न उठीं और पलकें अपने तथाकथित पाप के भार से झुकी रहीं।

शब्द आते रहे—"और कम्मो, मुसकान तुम्हारी मरण की रेखा बन गई। ज्यों-ज्यों तुम्हारे और सन्तोष के मन में सन्तान की लालसा बढ़ती गई, त्यों-त्यों एक के बाद एक खुल कर उतरने वाले प्याज के छिलकों की तरह वैवाहिक जीवन की असमताओं का रहस्य खुलता गया......डॉक्टर बनर्जी ने कहा, अमुक दवा लो, सन्तान होगी। तुम

बनर्जी की दवा पीती रहीं। और सन्तोष उनके इन्जेक्शन लेता रहा! लेकिन कामना, तुम्हारी कामना पूरी न हुई और ज्यों-ज्यों कामना कुंवारी रही, त्यों-त्यों अतृप्ति का ज्वार बढ़ता गया। अब तो तुम बेचैन रहने लगीं। और तुमने बम्बई के बड़े और मशहूर डॉक्टर वर्मा की शरण ली—वह भी कुछ कर न सके। वर्मा के पास विकृति का इलाज है, प्रकृति के अभाव की पूर्ति उसके पास भी नहीं है। यह, न तुम समझ पाईं, न सन्तोष, न बनर्जी और न वर्मा ही। तुम तो कैसे समझ सकती थीं? क्योंकि तुम नादान थीं और उस पर नौजवान थीं और नादान हुई तो कुछ न हुआ और नौजवान हुई तो कुछ न हुआ, क्योंकि तुम्हारे मन में अभी अतृप्तियों के तूफ़ान उठे न थे और तुम पुरुष के पौरुष से अनजान थीं। जो कुछ आनन्द तुम्हें मिलता रहा था, वह तुम्हारे अपने मन का मंगल था—तुम्हारा समर्पण ही तुम्हारा सुख था और सौभाग्य था। तुम अपने घूँघट में ही सुहागन थीं। अपनी लज्जा की लालिमा में ही तुम्हारे कपोल खिले-खिले थे और अभी उन पर यौवन की तृषाओं की ज्वालाओं की जालियों की लाल-लाल झाइयाँ न पड़ी थीं और न विलास के उष्ण और प्रमत्त संस्पर्श तुम्हें जलन दे पाए थे।...डॉक्टर वर्मा से निराश होकर तुमने जर्मन सर्जन काण्ट की सहायता ली। काण्ट ने तुम्हारे शरीर की जाँच की और जिस प्रकार होशियार बालक सपाटे से अपनी पोथी पढ़ लेता है, उस प्रकार काण्ट तुम्हारे स्वास्थ्य की पोथी को पढ़ गया और उसने बाहर-बाहर सिर हिलाया और भीतर-भीतर कहा कि लड़की यह उतनी ही स्वस्थ और तन्दुरुस्त है, जितनी खेत में झूमती हुई मक्का-बाजरे की फसल; जैसे झर-झर झरती हुई छोटी झरी, जैसे अभी-अभी खिली कली; जैसे सीप के मुँह खोलने पर जन्म लेने वाली मुक्ता...तुम भी एक मुक्ता थीं, परन्तु अपने पुरुष को मुक्त न कर सकीं। कसूर तुम्हारा नहीं, उसका था, क्योंकि तुमने तो अपना 'देय' दिया, समर्पण किया, परंतु सन्तोष उस शौर्य और पराक्रम और प्रकाश से वंचित था, जो नारी के समर्पण को सँजोकर अपने आपको जीवनमुक्त कर लेता है। पगली, कसूर तेरा नहीं, सन्तोष का है। है न?

"डाक्टर काण्ट ने भी यही कहा था। सन्तोष की जाँच करने पर उसने अपना निर्णय उस समय दिया था, जब सन्तोष बाहर बैठा अमर के साथ सिगरेट पी रहा था। तुमने डाक्टर का निर्णय सुना और सुन कर तुम सन्न रह गई थीं। तुम अपनी कुर्सी से उठ न सकी थीं, जैसे किसी ने तुम्हारे सिर पर सारा हिमालय रख दिया था! उस हिमालय का भार अकेली अपने सिर से कैसे हटा पातीं!......

"नारी के सिर से हिमालय-सा भार हटाने के लिए, पुरुष के प्रति नारी की श्रद्धा आवश्यक है। पुरुष की शक्ति और उसका आत्मविश्वास आवश्यक है।...और तुम्हारा पुरुष इस शक्ति से वंचित था!...

"उस सप्ताह लन्दन के दूतावास में सन्तोष की बदली हो गई और शहर में, घर में तुम अकेली रह गईं। और यह तो सारी दुनिया जानती है और तुम भी जानती हो कि अकेले आदमी को वासनाएँ और लालसाएँ और नौजवान कामनाएँ बहुत सताती हैं। तुम घर में अकेली रह गईं और शहर में अमर अकेला रह गया और तुम्हारे मन में सन्तान की लालसा अकेली रह गई और सारे तन का ज़ोर और समूचे यौवन का उछलता हुआ स्रोत अकेला रह गया, वह किसी चट्टान पर टूट कर बिखर जाना चाहता था, परन्तु न चट्टान थी और न प्रवाह था!

"डाक्टर से मिलने के बाद तुम अमर के बहुत निकट आ गई और सन्तोष को विलायत गये अभी पाँच ही महीने हुए होंगे कि तृप्ति का जन्म हुआ।"

"हाँ, हुआ तो सही।" कामना ने सिर झुकाए ही स्वीकार किया।

परछाईं की ध्वनियाँ धीरे-धीरे शून्य में विलीन होने लगीं— "सन्तोष जब विलायत से लौटा, अपनी छोटी-सी गृहस्थी में नन्हीं कलिका-सी तृप्ति को देखकर, फूला-फूला फिरने लगा। दम्पति की जो आकांक्षा थी, वह भगवान ने पूरी की।"

रात को सन्तोष और अमर जब सैर से लौट कर आये, कामना ने उन्हें भोजन कराया, परन्तु सन्तोष के बहुत आग्रह करने पर भी, अपनी थाली परोस कर कामना उनके साथ मेज़ पर नहीं बैठी।

रोज़ की तरह न उसने तृप्ति को दूध पिलाकर सुलाया और न ही उसे चूमते हुए लोरियाँ गाईं। बड़ी देर तक तृप्ति सन्तोष और अमर की गोद में खेलती रही और वहीं सो गई।

दोनों मित्र जब पास के कमरे में अपने-अपने पलंग पर सो गये, तो कामना बत्ती बुझाकर अपने कमरे में आई। उसने भी सोने की तैयारी की, पर नींद, जैसे रेतीले मैदान में पानी की तरह ओझल हो गई थी। उदास और निराश मुक्तकेशी वह खिड़की में खड़ी बाहर के शून्य और भीतर के कोलाहल पर दृष्टि डालती रही और रह-रह कर मन उसका इसी द्वंद्व से दोल पर झूलता रहा—

"आखिर, कम्मो कैसे कह दे...सन्तोष, मेरे सन्तोष, तृप्ति का चेहरा तुम से नहीं, अमर से मिलता है। कामना...क्या तू सन्तोष से स्पष्ट नहीं कह सकती ?...कह सकती हूँ...मगर इससे सन्तोष के मन को आघात पहुँचेगा।...यदि तू आघात पहुँचाना नहीं चाहती है, तो क्या तू यही स्वाँग रचती रहेगी कि तृप्ति सचमुच ही सन्तोष की बेटी है और इस तरह हमेशा-हमेशा, अपने पति को भ्रम में रखेगी ? क्या यह उचित है ? और वह भी, उस व्यक्ति के साथ, जिसका भोलापन और सीधापन बेमिसाल है। क्या यह धोखा नहीं है ?"

"है, ज़रूर है।" कामना के मुँह से शब्द निकले। धीरे से वह गुनगुनाई—"लेकिन मैं क्या करूँ ? क्या करूँ ?...यदि मैं इस स्वाँग को छोड़ती हूँ तो मेरी गृहस्थी नष्ट होती है...नहीं छोड़ती हूँ, तो आत्मा पर भार पड़ा रहता है। महसूस होता है एक पत्थर, बहुत बड़ा और वज़नदार पत्थर मेरी छाती पर पड़ा हुआ है और उसके नीचे मेरा मासूम दिल दबा जा रहा है"......"लेकिन वह दिल उस दिन नहीं दबा, जब तूने अमर को अंगीकार किया था और उस पुरुष से छल किया था, जिसके मनुष्य को देवता बनाने की शपथ, तूने विवाह-मंडप की छाया में ली थी ?...हाँ-हाँ, देवता। अगर स्त्री चाहे, तो हरेक आदमी देवता बन सकता है। ईश्वर ने मनुष्य को देवता बना देने की शक्ति किसी को नहीं दी, केवल नारी को दी है और इसी शक्ति के बल पर नारी जग-

दम्बा के रूप में अर्चिता, सम्मान के सर्वोच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुई।..."

कामना चुप हो गई।

जीवन में, चुप रहने के अलावा, अब वह और कर ही क्या सकती थी? फिर से उसका मन उससे बातें करने लगा और अपने रहस्य की पथरीली चट्टान पर अपने द्वंद्व को पछाड़ने लगा कि एक बार इस पर गिर कर यह चकनाचूर हो जाए, पर मन नहीं जानता कि जब तक उसके आँगन में रहस्यों का डेरा है और दुराव और अलगाव की माया अपनी मोहिनी से अपने आपको ठग रही है, स्वयं अपनी ही छलना की छाया में छली जा रही है, तब तक द्वंद्व कभी मिट नहीं सकता और जब तक रहस्य है, वह और भी ज्यादा उभरता रहेगा—

"सन्तोष को तनिक-सा संकेत देना भी सङ्कटप्रद है। कुछ कहना भी गुनाह है और कुछ न कहना भी गुनाह है!...न कहकर, कामना, तुझे आजीवन सत्य की समाधि पर कुण्डली मार कर बैठना होगा और अपने पति को धोखे में रखना होगा। और वह उस बालिका को प्यार करता रहेगा, जो वास्तव में उसकी अपनी पुत्री नहीं है, पराई है, पराया खून है। और तुम तन, मन और प्राणों से यह जानते हुए भी कि सन्तोष पराए खून को अपना खून समझ कर आल्हादित हो रहा है, अपनी नारी की—मनुष्य को देवता बनाने की शक्ति को दफ़न कर, ख़ामोश खड़ी रह जाओगी और बाप के अन्धे दिल को महफूज रखकर सन्तोष एक दिन नौजवान तृप्ति का ब्याह करेगा और उस ब्याह के लिए खुल-खुल कर ख़र्च करेगा।"

"लेकिन मैंने कितनी बार प्रयत्न किया कि आज रात अवश्य सन्तोष से सब-कुछ कह दूँगी, परन्तु बात होठों तक आकर रुक गई... कल जरूर कहूँगी...आज तो कह ही दूँगी...रसोई में कहूँगी...ताकि मेरे आँसू धुएँ के आँसू समझे जाएँ...अवश्य कहना पड़ेगा, चाहे सन्तोष थाली छोड़ कर क्यों न उठ जाए!..."

लेकिन कामना कह न सकी। उसकी नारी का रूप-स्वरूप और

मानस दो धाराओं में बँट गया। उस एक औरत की जैसे दो मूर्तियाँ बन गईं। एक अपना भेद छिपा कर रखना चाहती थी। एक सब-कुछ कह देना चाहती थी। अपने पति के चरणों में शीश झुकाकर, बिखरे कुन्तलों से अपने काले चेहरे को ढँक कर, रो-रो कर सर्वस्व उजागर कर देना चाहती थी कि मन का मैल धुल जाये और दिल का दाग़ धुल जाए और चेहरे पर यह जो एक और नया और नकली चेहरा पहन रखा है अपनी जगह पर न रह जाए और पति चाहे ठुकराए या क्षमा करे, कामना सत्य की अपनी कामनाओं को भस्मसात न होने देगी।

आज दोपहर में वह खूँटी पर अमर का कोट टाँग रही थी कि उसे एक अजब-सी गन्ध आई—वही गन्ध, वैसी ही गन्ध—उसने एक लम्बी, गहरी उसाँस ली थी और गन्ध जैसे उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गई थी!

कब से जैसे यह गन्ध उसका पीछा कर रही है। खुली हुई खिड़की, धुले हुए आँगन और सूने-सूने इस वातावरण के आरपार इसी गन्ध का पारावार लहरा रहा है और इसकी लहर-लहर पर कामना डूब-उतरा रही है: वह चुप रहेगी...वह चुप न रहेगी, सब-कुछ कह देगी... और अपनी नारी को मुक्त होने का अवसर देगी...और अपने पुरुष को देवता बनाएगी...कम्मो कह देगी......

लेकिन पारावार की तरंग-तरंग पूछती है:

"कम्मो कैसे कह दे?"

• •

५ परदेसी की विधवा

दिन के प्रकाशक से कलाकार रजनीकर को रायल्टी का चेक अब तक न मिला था। इसलिए, अपनी अनेक असुविधाओं के कारण, आकाश-मंडल के मंच पर वह अब तक अनुपस्थित था।

उसकी कठिनाइयां कुछ कम न थीं। एक तो, रात की धोबिन, पिछले पैसे न मिलने के सबब धुले कपड़े देने में आनाकानी कर रही थी। कहती थी, "संध्या बहू आपके बिस्तर लेकर आने ही वाली है, पास-पड़ोस में पानी न मिलने से, दूर महादेवजी घाट गई है। बड़ी देर भई, आती ही होगी। और जैसे आपको अपने कपड़ों की फिकर है, वैसे मुझे अपनी बहू की चिन्ता है महाराज। अभी पिछले ही जाड़ों में उसके मायके वालों को तीन हज़ार देकर, इस कपूत अंधियारे के हाथ पीले किये हैं। क्या करें, अपना ही हीरा खोटा, तो परखने वाले का क्या दोष। अँधियारे में लच्छन होते, तो क्यों रात-बिरात यों भटकता रहता। दिन भर अजगर की तरह आलस में ऊंघता रहता है। काम न धाम मेरी तो नेक नहीं सुनता है। मैंने कही, पराये घर की जवान बेटी है, धोबिन की जात है अंकुस में रखा कर, कोई बनिए या छत्री, बिरामन तो है नहीं कि छोकरियां उघाड़े सिर, हफ्सरों के सामने खड़ी, मटकती रहें। धोबिन के सत के सामने सीता का सत भी फीका पड़ गया था, एक दिन। अंधियारे ने मेरी एक न सुनी और आप से क्या कहूं बाबू, आप तो अपनी कला से अमरित बरसाते हैं। सबके मन-मानस की मानते जानते हैं। महादेव के घाट का तो बहाना है, बहू रांड वहीं अस्ताचल की घाटी में सोनार के सपूत उस सूरज से नैना मिला रही होगी। मेरे करम फूटे ......"

"अच्छा-अच्छा रहने दे, कल मिलेंगे। आज एक सभा में जाना है"—कहकर रजनीकर बिदा हो गया।

लेकिन अब तक सभा का काम शुरू हो गया था। परदेसी-स्मारक समिति के मंत्री चंदाराम (चन्दाआराम) महोदय ने बगल में कुछ कागज़ पत्तर दबाते हुए, दूसरे हाथ से बंद गले के कोट का ऊपरी बटन, अपना मैला कमीज ढंकने के लिए, लगाते हुए कहा—"सज्जनो, मैं आपका अधिक समय न लूंगा, क्योंकि मैं आपका काफी समय ले चुका हूँ। हमारे प्रसिद्ध कलाकार परदेसी की समाधि के लिये आप लोगों ने जिस उदारतापूर्वक चंदा दिया, सहयोग और योग दिया उसके लिये मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं। आज की सभा के सभापति श्रीमान् सेठ दाताराम जी अपनी अमृतवाणी से आपके हृदयों का सिंचन करेंगे। संक्षेप में, मैं आपको सभा के कार्यक्रम का संकेत देना चाहूंगा। लाला दाताराम का भाषण पहले होगा। फिर स्वर्गीय परदेसी जी के परिचित, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक और इष्टमित्र अपनी-अपनी श्रद्धांजलियां अर्पण करेंगे। और इस ओर मंच पर यह जो काले परिवेश में देवी जी विराजमान हैं, आप ही हमारे कथाकार की धर्मपत्नी हैं......"

इतना कहते-कहते चंदाराम जी ने जेब से रूमाल निकाला और इस फुर्ती से आंखों से छू दिया मानों चाहते हैं एक भी मोती जमीन पर गिर न जाए। दरअसल में, उनकी आंखें रीती और खाली थीं, इसलिए किसी की नजर पड़ने से पहले ही, वे उन्हें रूमाल में छिपा लेना चाहते थे।—"और आपके साथ जो दो बालिकाएं बैठी हैं, उनमें से एक बीस और दूसरी सोलह की है। इन तीनों के भविष्य की चिन्ता का प्रश्न स्मारक-समिति के सामने है और आप लोगों से छिपा नहीं है। सर्वप्रथम मैं आप लोगों की ओर से, इस विराट् बम्बई नगर की तरफ से बीस हज़ार की यह थैली इन विधवा बहन को भेंट करता हूं। बीस हज़ार को जो रकम हमें प्राप्त हुई, उसका पूरा हिसाब लिखा गया है और जिसकी एक प्रतिलिपि थैली के साथ नत्थी है, जांच के लिये बहन को दे रहे हैं। आइए बहन...इधर ज़रा कष्ट...कीजिए।"

महाशय चंदाराम अपना वाक्य पूरा भी न कर पाये थे कि उन्हें अपना दम घुटता सा महसूस हुआ और सहसा ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी फौलादी पंजे ने उनके गले पर अपना पहरा बिठा दिया है। पल ही भर में चंदाराम की बड़ी-बड़ी आंखें, और बढ़कर बाहर आती-सी लगीं और वे भीतर ही भीतर घिघियाने लगे।

प्रलय-संगीत का ताल देकर, भूमंडल के मंच पर उछलकर, एक पैर पर, आ खड़े होने वाले रुद्र की तरह, एक प्रेत-छाया, चंदाराम के सामने खड़ी होकर, अट्टहास करने लगी !

यद्यपि चंदाराम के हाथ अपनी स्वाभाविक गति से थैली उठाए परदेसी की श्याम वसना विधवा (जिसका सदैव तना रहने वाला सिर जरूरत से ज्यादा झुका हुआ था और जिसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आंखें रो-रो कर लाल हो गई थीं और लंबी बरौनियां अपने दुख के बोझ से झुक गई थीं) की ओर बढ़ रहे थे। फिर भी चंदाराम ने अपने सदा के हठीले स्वर में प्रेत से पूछ ही लिया—"कौन हो तुम ?"

लेकिन प्रेत चुपचाप रहा। प्रेत कहीं बोलते हैं ! प्रेत अपने आपको इतना पवित्र मानते हैं कि वे आदमी से बोलना पसन्द नहीं करते क्यों कि आजतक लाखों आदमी प्रेत बन गए पर दुनिया के इतिहास में एक भी घटना, ऐसी न घटी कि कोई प्रेत मनुष्य बन गया हो ! वास्तव में प्रेत मनुष्य बनना चाहते ही नहीं, क्योंकि प्रेत लाख बुरे हों, फिर भी उन्हें इस बात का गर्व है कि वे अतनु हैं, निराकार और छायारहित हैं। उनके स्वार्थ उतने सीमित और घृणित नहीं, जितने मनुष्य के।

और जब प्रेत की छाया चुप रही और उसने उत्तर कुछ न दिया तो, महाशय चंदाराम का साहस बढ़ गया और उन्होंने बड़े रोब से पूछा—"कौन हो तुम ? मैं तुम्हारे दरवाजे पर आमरण अनशन कर दूंगा। क्या समझ रक्खा है तुमने ? मैं आदतन खादी पहनता हूं। मिनिस्टरों के साथ जेल गया हूं।"

उत्तर में प्रेत ने अपना छायाकार बढ़ाकर चौगुना कर लिया ! अब तो चंदाराम की धोती की अंटी में बंधी चंदे की, चोरी की रकम,

खिसकने लगी। और थैली देते-देते उनकी उंगलियां परदेसी की विधवा की गोरी उंगलियों पर थमी रह गईं!

यह देख कर प्रेत ने गरज कर कहा—"पहचानो, मुझे पहचानो, मैं कौन हूं। जिन्दगी भर नहीं पहचाना, अब पहचानो, वरना, मैं तुम्हारे उस बंगले में आग लगा दूंगा, जो तुमने, चन्दों की रकमें हड़प करके बनवाया है। और बच्चू चंदाराम, निकालो, निकालो। अंटी में छिपी हुई चेक की पत्ती। जो तुमने इस थैली के हिसाब में से उड़ाली है। चंदाराम तुमने मनुष्यों को मूर्ख बनाया होगा, तुम नर को वानर बना सकते हो। तुमने कई बार इंसान को शैतान और शैतान को भगवान् बना दिया है, रिश्वत और रुपये के ज़ोर पर। लेकिन, आज तुम बचकर नहीं जाओगे! आज इस पवित्र समाधि के पास ही तुम्हारी कब्र बन जाएगी। तुमने छः फुटे मनुष्य देखे हैं, चौबीस फुटे प्रेत नहीं देखे! तुमने बीस हज़ार की चंदे की रकम में से दस हज़ार उड़ा लिए, जिसकी डकार अभी भी तुम्हारी तोंद से उठ कर गले में लड़खड़ा रही है। शेष पांच हज़ार में तुमने इस बेढंगो समाधि और इस सभा का आयोजन किया। उसमें से तीन हज़ार स्वागतगान और सांस्कृतिक नृत्य-पान और नाचने वाली उन अध-बिकी वेश्याओं पर खर्च कर दिया। बोलो, क्या यह झूठ है? क्या उस रात तुम वर्ली-सी-फेस पर, इस गाने वाली के साथ अधनंगी हालत में नहीं थे? और क्या नंगे नाच नाचने वाली इस मिस देसाई ने जुहू पर तुम्हारी खादी की धोती पानी के छींटों से भिगो न दी थी? तो, बाकी दो हज़ार में तुमने कच्ची ईंट और गारे से यह समाधि खड़ी करदी, जो मुश्किल से एक बारिश बर्दाश्त कर सकेगी और मुझे, फिर से खुले आकाश के नीचे भीगने-ठिठुरने और फटेहाल पड़े रहने को मजबूर होना पड़ेगा... हा... हा...हा... ! ! !"

"तो तुम प...प...प...परदेसी हो?"

"और नहीं, तो क्या खादी-धारी स्वदेशी हूं?"

इसी समय, सभा में शोर मच गया—"अरे रे, महाशय चंदाराम बेहोश हो गए! अभी-अभी तो मजे से भाषण दे रहे थे...जाने क्या हुआ

...बेचारे अच्छे हृष्ट-पुष्ट आदमी......"

परदेसी की विधवा के बादामी लोचनों से दो बड़े-बड़े बूंद गिरे किन्तु गिरने से पहले ही प्रेत-छाया ने उन्हें अपने आंचल में झेल लिया और उस आंचल को सिर पर चढ़ा लिया।

इसके बाद वह प्रेत चला गया। ऐसे कि, जिस तरह उसका आना किसी ने न सुना, उस प्रकार उसका जाना भी किसी ने न देखा।

"शिव-शिव" कहकर चंदाराम एक ओर कुर्सी पर बैठ गए और स्वयंसेवकों से कहने लगे—"नाहक आप लोगों ने विघ्न पहुँचाया। मैं तो मृतात्मा की सद्गति के लिए मंत्र जप रहा था।"

और फिर से उन्होंने आंखें बन्द कर लीं।

अब लाला दाताराम आगे आए और उन्होंने अपनी सुनहरी ऐनक सुरमई आंखों पर चढ़ाते हुए, जेब से लिखा हुआ भाषण निकाला। दस-दस के बीस नोट, काग़ज़ के साथ निकल कर इधर-उधर नीचे उड़ गए। स्वयंसेवकों ने उन्हें लपेट कर लाला जी की मेज़ पर रख दिया। पर लालाजी मुंह से 'धन्यवाद' भी न कह सके, क्योंकि, अभी ही वे अपनी पांचवीं नवोढ़ा पत्नी के हाथों का पूरी-हलवा दबाकर, चले आ रहे थे और सांस फूल रही थी।

सांस फूल रही थी और रात में दो-एक बार वक्त-बेवक्त जागने के कारण, उनकी आंखें भी उनींदी हो रही थीं। पढ़ने लगे तो, देखा कि उल्टा काग़ज़ पकड़े हुए हैं और हाशिया दाहिनी ओर आ गया है। उन्होंने कहा--भाइयो, और बहनो, आप तो जानते हैं : मलाड में मेरे भद्र-नगर में चार सौ कमरे हैं और करीब इतने ही किरायेदार हैं। कई जाति, धर्म और प्रांत के लोग रहते हैं, लेकिन मैंने परदेसी-जैसा **आदमी और आदमी क्या किराएदार एक भी नहीं देखा**—यह तो आप भी जानते है कि 'अच्छा' आदमी वही है, जो अच्छा किराएदार है। परदेसी आठ बरस मेरी खोली में रहा, पर किराये का नाम नहीं। मैं तो पहिले ही जान गया था, यह आदमी कुछ आवारा-सा दीखता है। मैंने पूछा, "तो तुम्हें खोली चाहिए?"

बोला—"हां।"

"क्या काम करते हो?"

"लेखक हूं।"

और इतना कहकर भले आदमी ने इस तरह छाती फुलाई थी, मानो लेखक क्या, कहीं का लाट-गवर्नर है। सौ बात की एक बात, इन लेखकों में कुछ नर्मी नहीं, गर्मी ही गर्मी है। पास में पैसे नहीं, पर मिजाज सातवें आसमान पर! इसी से ये इतना दुख उठाते हैं। सेठ लोगों से, बड़े आदमियों से मिलजुल कर रहें तो, मजे से जिंदगी कट जाए। बाल-बच्चे भी सुखी रहें और जब मर जाएं तो, अपने पीछे चार पैसे भी छोड़ जाएं। देखो जी, मैं तो धर्म-ईमान की कहता हूं। लाग-लपट मेरे पास नहीं......

सो उस दिन मैंने पूछा था—"भाई, लेखक तो हो, मगर करते क्या हो?"

"आपमें इतनी भी तमीज नहीं, लेखक हूं, तो लेखक का काम करता हूं।"

"और उसने तो मेरे यार ने, इस तरह बात की, जैसे खोली नहीं देखने आया है मेरी लड़की देखने आया है! लेकिन फिर भी मैंने तो उसे कमरा दे ही दिया। देना ही पड़ा, क्योंकि वह नगर-कांग्रेस के प्रेसीडेंट की चिट्ठी लाया था। खैर, अब मैं भाषण की ओर बढ़ता हूं।"

इतना कहकर, लाला दाताराम ने पुर्जा लाइट की ओर बढ़ाया और मुंह माइक्रोफोन के मुंह से मिलाकर, दहाड़ के स्वर में भाषण पढ़ना शुरू किया—

"सज्जनो, देवियो, देशबन्धुओ, भगिनियो, सुहागिनो और विधवा बहनो, नहीं नहीं बहन! ... हमारे चरित्र नायक श्री परदेसी का जन्म सन् उन्नीस सौ ... ओ... ओ ... ओ!... साले मास्टर ने क्या कुछ लिख मारा है, पढ़ने में नहीं आता......"

"कहां से आएगा पढ़ने में? तुम्हारा अपना भाषण हो, तब न? तुमने कब किसका लिखा पढ़ा है? अपना लिखा भी नहीं पढ़ सकते।

और तुमने जो खोली मुझे दी थी, वह नरक का मुहाना थी। उसके तुम चालीस रुपये हमेशा, हर महीने, पहले ले लिया करते थे। यह विधवा औरत तुम्हारा यह आरोप सुनकर क्रोध से कांप रही है। देखना, यही तुम्हारी भरी दूकान में तुम्हें नीचा दिखाएगी, जब रुपये की रसीदें तुम्हारे मुंह पर फेंक देगी। और तुम्हारे वे कमरे—उनके मालिक होने के नाते, तुम्हें किराया नहीं, फांसी मिलनी चाहिए। फांसी...समझे!"... और लाला दाताराम को लगा कि उनकी ग्रीवा पर बड़ा-सा एक पंजा गड़ता जा रहा है।

प्रेत ने फिर से ललकार कर कहा—"आज मैं तुझे नहीं छोड़ूंगा। सदियों से तेरी बेईमानी ईमान बनकर समाज के रखवालों—पुरोहितों और पाखंडियों के भाल का तिलक बनी हुई है! बता, क्या तू इसलिए इस सभा में नहीं आया कि तू इस विधवा के परिवार का हितैषी बनकर-इस षोड़शी लड़की से अपनी छठी शादी करना चाहता है?...'नहीं'... झूठ बोलता है, प्रेत से झूठ बोलकर आज तक कोई बच सका है? हमें क्या नादान इन्सान समझ रखा है कि जिसकी भीड़ में झूठ चल जाए और लोभ फल जाए? तूने आज इस सभा से लौटते वक्त, इस मासूम लड़की को उड़ाने के लिये, क्या अँधेरे-नुक्कड़ पर गुंडे नहीं बिठाए हैं? और उधर तेरी बीवी मास्टर जी के साथ मौज़ मना रही है। वह भेष बदले, यानी फ्राक पहन कर, मढ द्वीप के कुटीरों को गरमा रही है। और तू यहाँ झक मार रहा है! दाताराम, आज तेरा अन्तिम दिन है!"

"नहीं, नहीं, मुझे मत मारो। प्रेत राजा, मैं तुम्हारी गाय हूँ। तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, मुझे मत मारो। मेरे बेटों को डेथ ड्यूटी देनी पड़ेगी। अभी तो मुझे इन्कमटैक्स का हिसाब लिखना है, कल ही डायरे-क्टर को रिश्वत के रुपये पहुँचाना है। मुझे मत मारो। मैं तुम्हारी समाधि पर तांबे का पत्तर चढ़वा दूंगा।"

"तांबे का पत्तर? हमको क्या भिखमंगा समझा है?"

"नहीं, नहीं, चांदी का चढ़वा दूंगा। मुझे माफ़ करो देवता। सच कहा आपने, इन्सान से प्रेत अच्छे होते हैं। 'अदला-बदली' और

'बदला-बदली' में प्रेत इतने पारंगत कहां, जितने इन्सान ? भाई, मैं भी तो प्रेत हूं। प्रेत होना पसन्द करता हूं, ताकि आपको, कम से कम, धन-दौलत का ठौर-ठिकाना तो मालूम रहे ! आदमी तो धन का भक्षक है। प्रेत देवता ही धन के सच्चे रक्षक हैं। अरे, मेरे राजा, तुम्हें तो सब मालूम है, वो लच्छीराम हांडी वाला मरने से पहले, चार घड़े भर सोने की मुहरें जमीन में गाड़ गया था, जरा बताओ भैया, मेरे दादा, किधर छिपे हैं वे घड़े ?"

"किधर रखे हैं ? यह हम जानते हैं–वहीं पिछवाड़े के कमरे में।"

दाताराम की लल्लो-चप्पो में प्रेत भी फंस गया। आजीवन परदेसी को दाताराम ठगता रहा, मरने पर भी उसका पीछा नहीं छोड़ा।

मुहरों के घड़े का स्थान मालूम होना था कि लाला दाताराम अपनी पगड़ी मेज पर ही छोड़कर, एक जूता पहने, एक वहीं भूलकर, बीच सभा-मंडप से निकल भागे—"मिल गया ! मिल गया ! !"

—और परदेसी का प्रेत हाथ मल-मल कर पछताता रहा। और बड़े दीन भाव से अपनी विधवा की ओर देखता रह गया। उसने सेठजी का पीछा करने की सोची पर बदला लेने की हिम्मत न हुई। उसने उसे क्षमा कर दिया—"तेरा छल ही तेरी मौत है।"

और परदेसी की विधवा के अनियारे नेत्रों से भारी-भारी मोती गिरे, किन्तु गिरने से पहिले ही प्रेत ने, पल भर में, उन्हें अपनी अञ्जली में झेल लिया और सिर पर चढ़ा लिया।

तब उपस्थित जन-समूह ने "भोर से पहले" के संपादक, प्रभाकर त्रिवेदी को सभा का संचालन करने को कहा।

संपादक जी ने अपने बाएं हाथ का आस्तीन जरा ऊंचा चढ़ा लिया, ताकि उनकी सुनहरी रिस्टवाच बिजली के लट्टू के नीचे अपनी चमक दिखाए, खासकर ग़रीब लेखकों को। उनकी एक नज़र श्रोता-वर्ग पर और दूसरी परदेसी की बीस वर्षीया खूबसूरत बेटी पर थी। वे उसे बारम्बार कह चुके थे कि वह अवश्य "भोर के पहले" के साप्ताहिक संस्करण में अपनी कविताएं और गीत छपवाए...वे तो बड़े रसीले हैं

उसके रूप की तरह।

"और स्वर्गीय परदेसी तो "भोर के पहले" में बरसों लिखते रहे हैं। दशहरा हो या दीवाली, टैगोर-जयंती हो या गांधी-जयन्ती। समय पर उनकी कहानियां और राजनैतिक रचनाएं हमें मिल जाती थीं......"

और प्रभाकर त्रिवेदी ने मुँह खोला ही था कि बड़ा-सा एक झिंगुर उनके मुँह में घुस गया। वे 'आक थू...आक थू' का आलाप लेते रहे, पर झिंगुर कहीं दिखाई नहीं दिया। लेकिन, एक आवाज़ आई, उनके कानों में—"प्रभाकर, तू कितना पतित है? किस दिन तूने रचना का पैसा मुझे दिया? मेरे नाम के नकली वाउचर और जाली रसीदें बनाकर, अपने मालिकों से मेरा पारिश्रमिक एेंठ लिया, लेकिन मुझ तक नहीं पहुँचाया। इसी तरह की बेईमानियों के बल पर, तू सफेद बंगले में रहता था और काली कार में घूमता था। पन्द्रह वर्षों में तूने मेरा दस हज़ार रुपया हड़प कर लिया और मेरा बच्चा दवा के अभाव में बिना क़फ़न के मर गया। लेकिन आज तू भी बेमौत मरेगा..."

"एं......एं......कौन? परदेसी, अरे यार तू मुझे हमेशा डराता ही रहेगा? तेरी यही आदत ख़राब है। अच्छा बता, कॉफी पिएगा? ठंडा मंगवाऊं? यह ले, 'ब्रदर्स केरेमाजोव के फ्री पास...मगर यह हाथ तो मेरे गले से हटा ले, भैया! अरे बाप, कलम उठाने वाले हाथों में इतना ज़ोर! माफ कर दे। अभी दीवाली विशेषांक निकालना है। अमरीकी स्रोत से, काश्मीर के खिलाफ नोट लिख देने पर, डालर मिल गए हैं, न्यूयार्क जाना है। अरे यार, मैंने तो तुझे भी कहा था कि क्या धरा है गति-प्रगति की बातों में? जेब भरो और मौज करो। बता, जुहू चलेगा। रात भर के लिए दो सौ में सुनन्दा बिजलीकर को एन्गेज किया है, बोतलें भी खुलेंगी। चल यार, ना-ना, क्या करता है? यों मरने पर भी, ब्राह्मण ही बना रहेगा?"

यह बात सुनकर प्रेत को हंसी आ गई और उसने प्रभाकर को अपनी गिरफ्त से छोड़ दिया। उसने यह भी सोचा कि ऐसे बोतल फोड़, दारूखोर बम्बई में जीवित रहने ही चाहिए, ताकि मद्यनिषेध के धर्मदूतों

की असफलता के प्रमाण उजागर रहें।

मुक्ति पाकर, प्रभाकर त्रिवेदी झटपट परदेसी की विधवा की ओर दौड़े और पैरों पड़कर बिलखने लगे। सहानुभूतिमयी, बेचारी, उस नासमझ महिला के रतनारे नैनों से बड़े-बड़े दो बूंद ढुलके लेकिन ढुलकने से पहिले ही प्रेत ने उन्हें अपने आंचल में झेल लिया और सिर पर चढ़ा लिया...आखिर, यही वह अमृत था, जिसे पाकर परदेसी ने आजन्म गंगाजल की उपेक्षा की थी।

प्रभाकर त्रिवेदी के पश्चात एक-एक कर कई वक्ता मंच पर आए और बड़ी अदा और बेशर्मी से उन्होंने अपनी कलाबाजियां दिखाईं। एक से एक ने, बढ़-बढ़ कर झूठ बोला। केवल शब्दों की छटा छिटकाना चाहते थे वे, सत्य-असत्य या विचार-विवेक की उन्हें चिन्ता न थी। इस परम्परा में कई लेखक, संपादक, प्रकाशक, आलोचक और समाज-सेवक यानी नेताजी अपने-अपने भाषणों का प्रवाह बेरोक बहाते रहे।

लेकिन, परदेसी का प्रेत मंच के एक कोने में उकडूं बैठा सारी लीला देख रहा था, वह इस दृश्य का दृष्टा, साक्षी था। चंदाराम से वह लड़ा, लेकिन दाताराम से उसने हार खाई। दाताराम उसे ठगकर चलते बने। मनुष्य तो मनुष्य, जो व्यक्ति छल-कौशल में प्रेतों को भी पीछे छोड़ देता है, उसे क्या कहा जाए! फिर प्रभाकर त्रिवेदी—'भोर से पहले' के धुरंधर संपादक, बाहर कपड़े जितने सफेद उतनी भीतर कालिख पुती हुई। दिखलाने को तो ये पान भी न खाएंगे, पर शाम को रेडियो-क्लब में कोई 'स्ट्रीटवाकर' लड़की किसी सरकारी अफसर या व्यापारी डायरेक्टर को सौंपकर, अपना काम बना लेंगे। इन्हें तो बस हुक्म मिलना चाहिए। हाथ में नोट रख दीजिए, फिर देखिए करामात। कहें तो ये लंदन की रानी की 'चोली' चुरा लाएं।

ऐसे महापुरुषों से प्रेत बेचारा क्या खाकर लड़ सकता है? उसने सोचा, आदमी से लड़ना-भिड़ना आदमी का ही काम है। अच्छा आदमी ही बुरे आदमी से लड़ सकता है। गुस्से से नहीं, प्रेम से ही उसे जीत सकता है। प्रेत का क्या, लड़ते-लड़ते उसे यदि गुस्सा आ जाए, तो वह

अपने शत्रु को कच्चा चबा जाए।

एक कोने में, दो विद्यार्थीनुमा छोकरे बैठे आपस में कानाफूसी कर रहे थे और मंच की महिलाओं को देख रहे थे। प्रेत को पहले तो कुछ शक-सुबा हुआ, फिर उसके कान चौकन्ने हो गए। उसने अपनी नाक फुला-फुलाकर, सूंघ-सूंघ कर, इधर उधर देखा और तब हवा का झोंका बनकर उन छोकरों के निकट पहुँचा।

"यार, बड़ी से भी छोटी लड़की गज़ब है ?" छोटा कह रहा था।

"छोटी तुम्हारे लिए, बड़ी हमारे लिए ! बुड्ढा मर गया, अच्छा हुआ। हमारे दिल के लिए दौलत छोड़ गया ! अब तो विधवा को पटा लो, "भांजी-भाजी" कहकर, फिर तो बीसों उंगलियाँ शहद में हैं।"

प्रेत ने उन्हें घूर कर देखा, पहचानने की कोशिश की—'अरे ये तो एम. ए. के वही विद्यार्थी हैं, जो 'गद्य और कथा-साहित्य के विकास' पर मेरे सांसारिक रूप की सहायता चाहते थे। अपनी बेढंगी कहानियां लेकर, जब-तब चले आते थे और मैं रात-बिरात बैठा, इन्हें प्रेरणा और प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करता था। मेरी बच्चियां जुकाम, बुखार और बेबसी की दशा में भी इन्हें चाय-नाश्ते से रहित नहीं रखती थीं और इनके मानस इतने मलीन ! क्या मलीनता का नाम ही मनुष्य है ! लोग हम प्रेतों को 'काला' क्यों कहते हैं ? अपनी कल्पनाओं में हमें भयंकर और काले-कुरूप क्यों देखते-अवरेखते हैं ? यह कितना कुरूप और वीभत्स है मानवमन ! इतना कीचड़ और कुलुष हममें कहां ? जो कुछ है अगोपन है। सबके सामने है। लेकिन आदमी, अब तो इसका नाम लेना भी हमारे लिये पाप है। लोग कहते हैं प्रेतों से आदमी डरता है, लेकिन असलियत वे नहीं जानते, प्रेत ही डरते हैं आदमी से। क्योंकि कुटिलता, कटुता और छल-कौशल में आदमी की बुद्धि या दुर्बुद्धि, हमसे कहीं अपरम्पार है। शायद हमारे पूर्वजों ने, हमारा तथाकथित छल आदमी से सीखा है। हम अवश्य आदमी के शिष्य रहे हैं !

और शायद विद्यार्थियों के शब्दों की भनक परदेसी की विधवा के कानों तक गई थी कि उसकी रेशमी-गुलाबी आंखों से, विश्व की प्रथम

सुधाधार की क्षमामयी पहली दो बूंदों-सी बूंदें गिरीं, मगर गिरने से पहले ही प्रेत ने पहुंचकर वहां, उन्हें, अपने आंचल पर झेल लिया और उस आबे-जमजम से पवित्र और आर्द्र उस आंचल को अपने सिर पर चढ़ाया, लोचनों से लगाया, छाती से छुआया !

सुसभ्य, सुसंस्कृति और सुप्रतिष्ठित कहलाने वाले इस समाज की इस सभा के एक कोने में दूर फर्श पर कुछ मैले-कुचैले गंदे तन-बदन और वस्त्रों वाले प्राणी, सकुचाए से, बैठे थे। मजदूर, आवारा, बेकार, बेरोजगार, ठगे हुए, सताए हुए, अभिशोषित, धोबी, कहार, नाई, कम्पोजीटर, लिफ्टमैन, लड़कियों के दलाल, पान वाले, बैरा, तांगे वाले, पोस्टमैन, इस समूह में थे। कुछ लड़कियां भी थीं। अपने छत की छाया में पलने-पनपने वाली गंदगी न देखकर, दूसरों की दुर्गन्ध पर उंगली उठाने वाली दुनिया, जिन्हें आवारा-बदचलन लड़कियां कह कर पुकारती है, वे अपाहिजा, जिनके बाहरी मैल को दुनिया ने कभी अपने आंसुओं से धोने की कोशिश न की, वही लड़कियां जिनकी गति को अवगति बनाने के अपराधी समाज को सूली मिलनी चाहिए, वे, सबकी सब अपनी नजरें झुकाए शोकमग्ना हैं। अपने भोलेपन के कारण अपराधिनी मान रही हैं अपने आपको कि लोक में जग जाहिर है कि परदेसी ने इनमें से एक-एक लौंडियों के एक-एक चुम्बन के लिए प्रभु को, अपने पिता को अनेक बार भुलाया। लाख-लाख बार ठुकराया कि सड़े हुए सिद्धान्तों की रपटीली राह पर लड़खड़ाने वाले मुस्टण्डों ने, पुरोहितों ने उसे 'पिशाच' कहकर, उसके सुख से ईर्ष्या की, उस सुख से जो उसे कभी जगर-मगर महलों की मोमबत्तियों के सहवास में भी न मिला ! वह सुख जो उसे भटकाई गई, बेगुनाह लड़कियों के साथ, अंधेरे मैदानों की तारों भरी रातों में, मिला था, जब कि भूख और परेशानी के कारण झर-झर झरते उनके गरम आंसुओं को उसने अपने गरम-गरम होठों से पी लिया था ! उस आचमन से तृपरण के पिपासु उसके पूर्वजों और जन्मरस के इच्छुक उसके उत्तरजों का उद्धार हुआ !

"भोर के पहले" के सम्पादक प्रभाकर त्रिवेदी के बयान के बाद

सभा की कार्रवाई कुछ शिथिल-सी पड़ गई और श्रोताजन भी ऊबे-डूबे से नज़र आए, इसलिए कांग्रेस-कुटीर की दो लड़कियां मंच पर गीत गाने के लिए लाई गई, ऊबे हुए कांग्रेसियों का मन बहलाने में ये कुशल थीं।

इन लड़कियों ने अपनी तीखी, असंयम के कारण बेसुरी आवाज़ में गीत की दो-चार कड़ियों को स्वर्ग का वरदान दिया ही था कि सभा में शोर मच गया—"आ गए, आ गए, मिनिस्टर जी आ गए, शांति, भाइयो, शांति ! बैठे रहिए. सबको उनका दर्शन करने दीजिए !"

सभा में सर्वत्र शांति छा गई, जैसे रक्तपेयी चीते के आने पर मृगदल मौन रह जाता है। मिनिस्टर जी के आगे-पीछे वर्दीधारी चपरासी और इधर-उधर सिपाही थे। पीछे-पीछे उनकी एक रखेल भी थी। आदमी भले थे। इसलिये उन्होंने नंगी-फटेहाल जनता की इस भगदड़ी भीड़ को इतने करीब से अपने दर्शन दे दिये !

फिर मञ्च पर आकर उन्होंने चारों दिशाओं की ओर हाथ जोड़ कर लोगों का वंदन किया। लोगों ने हर्षित होकर तालियां बजाई— "कितना बड़ा मिनिस्टर, पर अभिमान छू भी न गया !"

मिनिस्टर जी से विनती की गई कि अब वे परदेसी की समाधि पर आच्छादित रेशमी चद्दर हटाकर, समाधि के अनावरण-समारोह का समारम्भ करें।

मंद-मंद मुदित मुद्रा को, काश्मीरी सेव के रस से ढले गालों को चमका कर मिनिस्टर महोदय, तोंद के भार से बोझिल चाल से धरती-माता की पसलियां कुचलते हुए, समाधि तक आए और चप्पल छोड़कर, हाथ जोड़कर, प्रणाम करने लगे, जनता ने 'जय जय' कार किया, परदेसी का नहीं, मिनिस्टर जी का; मिनिस्टरों के जमाने में लेखक का 'जयकार', कैसे हो सकता है ?

मिनिस्टर ने धरती को अपने भाषण से भर दिया है और आकाश पर अपनी गूंज का पहरा बिठा दिया है, और लेखक के लिए तो सड़क पर सकुशल चलने का बीमा भी नहीं है !

प्रेत की उत्सुकता बढ़ी। वह भी झुककर अपना क़द छुटियाता हुआ, मनुष्य की यह लीला निरखने के लिए आगे बढ़ा!

समाधि का अनावरण हुआ! मिनिस्टर जी ने, परदेसी की विधवा, ने, उसकी बेटियों ने, परिचितों ने फटेहाल, गंदे लोगों ने उस पर फूल चढ़ाए। तालियां बजीं और लोगों का समूह आगे बढ़ा।

सभा में प्रच्छन्न-सी कुछ धक्का-मुक्की हुई। धकेल कर आगे बढ़ने वाले, भीड़ में घुस जाने वाले वे लोग थे, जिन्होंने महाशय चंदाराम को चंदे की छोटी-बड़ी रकमें दी थीं, समाधि का अनावरण हुआ तो, उनकी उत्सुकता बढ़ी कि समाधि की दीवार पर जो संगमरमर का पत्थर लगाया गया है, उस पर 'दानी दाताओं की नामावली' सुनहरे अक्षरों में अंकित है, उसमें हमारा नाम है या नहीं? नाम यदि है, तो ऊपर से ऊपर लिखा है या खिसका दिया गया है, अरे कुछ नहीं कह सकते। ज़माना ही ऐसा है। लोग बड़े बेईमान हैं।

तब आवाज़ आई—"अरे साहब, कहां गया, वह, झोली वाला महाशय चंदाराम? नक्द रुपये ले गया और हमारा नाम नदारद?"

"वाह साहब, यह कहां का न्याय है? हमारा नाम इतना नीचे। हमारे पांच सौ-एक रुपये क्या हराम के आए थे?" दूसरे बोल सुनाई दिये।

"हराम के तो थे ही" भीड़ में से किसी ने कहा।

"अरे, मेरा नाम नहीं! मेरी स्वर्गीय मातेश्वरी का नाम नहीं! मेरे ताऊ का नाम नहीं! ये क्या चार सौ बीसी है, कहां गया चन्दा-राम? हम उस साले की मां.........!"

"चुप भी रहो, हमारे तो हज़ार लग गए, नाम नौ फुट नीचे। तुम्हारे तो तीन सौ ही थे।"

"लेकिन हमारी-तुम्हारी क्या बराबरी। तुम्हारी तो बहुए कमाती हैं। बेटियां कमाती हैं। हमें दिनभर भट्टी के पास बैठना पड़ता है।"

"तुम्हारी भैन भी क्या कम थी? नगजी हीरामल के घूरे पर,

अब भी उसके अधूरे गर्भ बदबू फैला रहे हैं।"

पहले वाले महाशय ने उछलकर इनकी गर्दन दबोच ली। इनके पहलवान भी बढ़े...मनुष्यों को यों लड़ता देखकर, प्रेत को पहले तो बड़ी लज्जा आई, फिर बड़ा मजा आया और वह उछल कर मैदान के इमली के पेड़ पर चढ़ गया और सघन एक डाल पर पैर लटकाए, बैठ गया। और हथेली पर ठुड्डी टिकाए, ठीक लेखक की दृष्टि से समारोह का आरोह-अवरोह देखने लगा। लड़ैता जब घूंसा उठाते, वह भी अश्रवणीय ध्वनि में 'दे दे', 'पटक', 'मार-मार' कहकर मगन होता था। मिनिस्टर जी—'शांति, भाइयो, शांति! बापू जी की आत्मा को क्लेश होगा, शांति रखिये। कस्तूरबा की आत्मा अधीर हो रही है, आपका क्रोध देखकर। क्रोध पाप का मूल है......' बार-बार दुहरा रहे थे, पर लोग अब उनकी कब सुनने वाले थे। कुछ आवाजें उन्हें भी कोसने लगी थीं और साथ की उनकी सुन्दरी के लिए लफंगे लोग बोसे उछाल रहे थे और 'हाय, तेरा क्या कहना...'चिल्ला रहे थे!

अपने ही अगणित इन कपूतों का, यह अकांड तांडव देखकर, परदेसी की विधवा का मासूम हृदय पसीज रहा था और उसका मातृत्व गल-जल कर आंसुओं में बह रहा था और पेड़ से उतर आया प्रेत, उन आंसुओं को अपने आंचल और अपनी अंजली में झेल रहा था और सिर पर चढ़ा कर आंखों से छुआ रहा था और मुक्ति का वरदान पा रहा था!

और भीड़ आगे बढ़ रही थी, और शोर बढ़ रहा था और रात बढ़ रही थी और कोलाहल में आदमी को आनन्द आ रहा था। वीभत्स इस रस में उसकी रुचि देखकर, डर कर, सहम कर, दुबक कर, बंदर की तरह दोनों हाथ-पैरों पर चलता हुआ प्रेत सभा-मंडप से दूर, दुम दबाए भाग रहा था, वह आदमी से परे, प्रेतों की शरण चाहता था।

और होहल्ला बाढ़ पर था। आवाजें ऐसी बढ़ीं कि समाधि में सुख-शांति की अंतिम नींद सोए परदेसी की नींद उचट गई और बेचैनी में वह बार-बार करवटें बदलने लगा। कोई चारा न देख, अन्त में,

उसने चिल्लाकर कहा—"मूर्खो काम के लिए लड़ो तो लड़ो, नाम के लिए क्यों लड़ते हो ?......समाधि की बाजू पर नाम चाहते हो। अगर इतना मोह है इस समाधि से, तो, आओ, तुम ही आकर लेट जाओ, सो जाओ यहां! मैं फिर से फुटपाथ पर निकल जाऊंगा......"

और उस रात, अपनी समाधि में—

परदेसी को रात भर नींद नहीं आई!

६ संदेह का सिंदूर

"फिर क्या हुआ ?" नीलम ने उत्सुकता से पूछा ।

"हुआ क्या !" विज्ञान बाबू कहने लगे—"नीना दूसरी बार जब मायके गयी तो लौट कर न आई। बाद में, सुरेश को ख़बर मिली कि वह नागपुर के किसी अध्यापक के साथ रहने लगी है ।"

"राम, राम !" नीलम ने घृणापूर्वक कहा और चद्दर से अपनी देह को भलीभांति ढँक लिया । फिर अपने पति की ओर देखकर पूछा : आप की क्या राय है, इसमें ग़लती किसकी है ? सुरेश की या नीना की ?"

"अवश्य नीना की"—विकास बाबू, जो अब तक चुप बैठे थे, न्यायाधीश की गम्भीरता और तत्परतापूर्वक बोले ।

लेकिन, इस उत्तर में इतना हठ और आग्रह था कि न नीलम ही कुछ बोली और न विज्ञान ने ही कुछ कहा ।

दोनों ने अनायास एक दूसरे की ओर देखा और दो पल देखते रह गये, मानो परस्पर एक दूसरे के मर्म में झांक रहे हों !

विकास बाबू अपना चुरुट पीते रहे और तटस्थ-भाव से कनखियों से दोनों को देखते रहे । विज्ञान ने सोफे से उठते हुए कहा—"मुझे बड़ी खुशी है कि आप दोनों, हमारे पड़ोस में रहने आये हैं । बड़ी भाग्यवान हैं नीलम बहन ! कितनी जल्दी यह मकान मिल गया ! वरना, हम जब बॉम्बे आए थे, कुछ न पूछिए, हर रविवार को मैं ग्रांट रोड से दहीसर तक, हरेक उपनगर के चक्कर काटता । पर अन्त में निराश होना पड़ा !......मेरा ख़याल है, नीना लौटकर नहीं आएगी सुरेश के पास । और सुरेश जब अकेला लौटेगा, क्या करेगा, इस इतने बड़े मकान को !

मजे से आपको सजा-सजाया बँगला मिल गया ! यह ड्रेसिंग टेबल, यह पलंग, ये तस्वीरें, यह रेडियो ! रसोईघर में बरतन भी कितने ! एक से एक शानदार ! कुछ भी हो, नीना देवी के चुनाव की तारीफ करनी पड़ेगी।"

"लेकिन विकास के बारे में उनका चुनाव असफल रहा।" नीलम ने अपने पतले होठों से मुसकराते हुए कहा।

"ख़ैर, यह पति-पत्नी का बखेड़ा है, हमें क्या करना है !" विकास ने अपनी गम्भीरता को बंट कर कहा।

विज्ञान के जाने पर, वे बड़ी देर तक वैसे ही, विचारमग्न बैठे रहे। सामने 'सुरेश और नीना' की तस्वीर टंगी थी। ब्याह के बाद का पहला फ़ोटोग्राफ़ था। उन्होंने सोचा, नीना सचमुच सुन्दर थी ! देखा तो नहीं मगर फ़ोटो से पता चलता है ! सुन्दर स्त्री, पुरुष के लिए वर-दान है और अभिशाप भी !

नीलम बच्ची की मच्छरदानी ठीक कर रही थी। विकास बाबू की ओर उसकी पीठ थी। सोचते रहे वे, इसी तरह नीना भी अपने दोनों बच्चों को प्यार और जतन से रखती होगी। लेकिन क्या कारण है कि वह दूसरे आदमी के साथ भाग गई ? उन्होंने चुरुट से धुएं की बड़ी-सी लहर छोड़ी और अपने आप में प्रश्नोत्तर के जाले बुनते रहे। आख़िर, औरत का क्या भरोसा है। चंचल और मनचली होती है, यह जात। उन्होंने फिर से तस्वीर की ओर देखा। तस्वीर से जैसे एक छाया-मूर्ति उभरी और धीरे-धीरे जैसे एक लम्बा-तगड़ा नौजवान उनके सामने खड़ा हो गया। पर, निराश और हताश था उसका चेहरा। विकास बाबू के कंधे पर हाथ रख कर कहने लगा—"मेरा घर है यह, खुशी से इसमें रहो। इसे अपना ही घर समझो। लेकिन, औरत का कभी भरोसा मत करना। और किसी जवान मर्द को अपने घर में न आने देना। वरना, जानते हो, बाद में पछताना पड़ेगा।" विकास ने झटके से चुरुट मुंह से हटाकर कुछ कहना चाहा, पर सुरेश ने नीलम की ओर संकेत कर चुप रहने का इशारा किया और फिर उनके चुरुट

के दो फूंक लेकर, अचानक ओझल हो गया !

"क्या सोच रहे हैं ?" नीलम ने विकास के बालों को अपनी उंगली से खिलाते हुए पूछा।

"कुछ तो नहीं, हाँ......हाँ।" और मन ही मन कहने लगे, देखा, नारी की जाति ! अभी-अभी विज्ञान से हँस-हँस कर बातें बना रही थीं अब मुझे उल्लू बनाने चली है ! बड़ी फ़िक्र है मेरी ! दिन-भर अपनी बच्ची में उलझी रहती है, जैसे हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं। और जवान की मौत की तरह, अचानक एक खयाल आया—हूं ! विज्ञान को फाटक तक पहुंचाने गई, तो, इसे इतनी देर क्यों हो गई ? अंधेरे में क्या कर रही थी ?

उन्होंने घूर कर नीलम की ओर देखा। नीलम दवा का बक्सा खोल रही थी—"विज्ञान जी को पहुंचा कर फाटक बन्द करने चली तो पैर में चोट आई कि दो मिनट वहीं धरती पर बैठ गई। अंगूठा सुन्न हो गया !"

विकास बाबू समाधिस्थ, मौन रहे, मानो अपनी पत्नी की सेवा से ज़रूरी है इस चुरुट की चाकरी।

पैर में पट्टी बाँध कर नीलम आईने के सामने खड़ी हो गई। अपने केशों को बिखरा कर, एक ढीली चोटी से उन्हें बाँध दिया। फिर कपोलों पर पाउडर का 'टच' देने जा रही थी कि नीना मुस्काने लगी—"मैं भी, यहाँ, इसी जगह खड़ी होकर सिंगार किया करती थी। लेकिन अपने पति ने सदैव मुझे छला ! मुझ पर लांछन लगाये और मुझे घर से भाग जाने पर मजबूर कर दिया।"

"लेकिन, तुमने यह अच्छा नहीं किया। कुलवधू अपने घर की रानी है। घर की देवी है वह, घर उसका मन्दिर है। उस मन्दिर को अपवित्र करने का हक़ न पुरुष को है, न स्त्री को। तुम लौट आओ नीना !"

'नीना' शब्द उसके मुंह से जोर से निकल पड़ा ! किन्तु, विकास बाबू अपने लोक में थे कि उन्हें कुछ सुनाई न दिया। स्वस्थ,

प्रसन्नवदना नीलम उनके पास आकर बैठ गई—"सो जाइए अब। दिन-भर के थके-हारे लौटे हैं।"

विकास बाबू आज्ञाकारी बालक की तरह लेट गये। नीलम के लिए जगह छोड़कर, उन्होंने करवट बदल ली और आँखें बंद किए सुरेश और नीना के विशिष्ट जीवन पर विचार करते रहे! चलचित्र की भाँति तस्वीरें सामने आतीं और अपनी झलक दिखा कर चली जाती! फिर नीलम ने 'स्विच-ऑफ' कर दिया और विकास बाबू को अपने पास पलंग पर हलचल महसूस हुई। नीलम उन्हें चद्दर उढ़ा रही है। नीना भी यों ही दिखावट-बनावट के लिए अपने पति की सेवा करने का बहाना करती होगी और फाटक तक पहुंचाने के बहाने, अध्यापक जी के कन्धे पर सिर टिकाए आहें भरती होगी। स्त्री का क्या भरोसा! और नीलम से जब मैं कहता हूं, न्यू ईरा में नई फ़िल्म आई है, तब यह बेबी के दाँत निकलने का बहाना बना देती है और विज्ञान यदि कहता है, तेज़ गरमी के दिन भी, 'आज ठण्डा, सुहावना मौसम है' तो, जरूर यह मुसकरा कर उसका समर्थन करेगी। इन्हीं विचारों की उधेड़बुन में विकास को नींद आ गई।

नीलम ने बच्ची को दूध पिलाया और बोतल नीचे रखने जा रही थी कि नीना ने उसे झेल लिया—"लाओ, मैं रख देती हूं। आप मुझसे नाराज़ क्यों हैं बहन, मैं भी इसी तरह, बच्चों की देख-भाल करती थी। लेकिन मेरे पति का स्वभाव ही ऐसा था कि मुझे घर छोड़ना पड़ा!"

"घर छोड़ना पड़ा! इस कथन पर कौन विश्वास करेगा? तुम नारी थी, माँ थी, पति का न सही, अपनी संतान का मोह तो तुम्हें होना चाहिए। क्या उनके प्रति भी तुम्हारे मन में ममता न थी? न नीना, लौट आओ।"

"बहन, आपको कैसे विश्वास दिलाऊं? सुरेश ने मुझ पर कौन-सा अत्याचार न किया? उसने मेरी आत्मा को कुचल कर रख दिया। यदि मेरी आत्मा जीवित रहती और मेरा सम्मान सुरक्षित रहता तो

क्योंकर मैं घर छोड़कर, बेघर होती ? अब, जब जा चुकी तो सम्मान लेकर क्या करूंगी ? मेरा मन तो उसी दिन आहत, अपमानित, पतित हो चुका था, जिस दिन मेरे अपने ही पति ने मुझ पर दोषारोपण करते हुए पूछा था—"बता, तू किसके साथ गई थी !"

"और मैं रो-रो कर कह रही थी—मैं कहीं नहीं गई थी, सुरेश ! कहीं नहीं......विशेष काम से गई थी।"

"बतलाती क्यों नहीं ? कौन-सा काम था वह ?"

"किसी पर वह रहस्य प्रकट करना निषिद्ध है।"

"हूं ! मुझे तिरिया-चरित दिखाती है !"

"और इतना कह कर नशे में वह मुझे पीटता रहा कि मैं बेहोश हो गई।"

सुनकर नीलम के हाथ से दूध की बोतल छूट-गिरी। लेकिन टूटी नहीं। कहने लगी—

"नीना, देखा, बोतल टूटी नहीं। गिरने से आदमी टूटता नहीं। टूटता वह तब है, जब उसके मन में अपनी भूलों के लिए प्रायश्चित नहीं रहता ! पतन से डर कर, पाप की ओर बढ़ते जाना परम पाप है। पाप पुण्य बन सकता है यदि, लोचन पश्चाताप के आँसुओं से भीगे हों और मन में श्रद्धापूर्वक उठने की कामना हो।"

नीलम की मुन्नी रोने लगी। नीना की छाया सहम कर ओझल हो गई, जैसे उसकी आवाज से शिशु की नींद उचट गई है।

नीलम थपकी देकर बेबी को सुलाने लगी—'जाओ, बेबी सोती है।"

बड़ी देर तक वह कमरे में चहल-क़दमी करती रही। अर्द्ध-निद्रित, अर्द्ध-जाग्रत अवस्था में विकास बाबू सपने में कुछ बड़बड़ाये और चीख कर उठ बैठे—"अच्छा मेरे देखते यह ढोंग ! मुझे क्या सुरेश समझ रखा है !" और ज़ोर का एक तमाचा उन्होंने नीलम के कोमल कपोल पर जड़ दिया !

नीलम का सिर भिन्ना गया। वह नीचे बैठ गई।

"छिप-छिप कर बातें करती है !—जाओ, जाओ ! बाबू जग जाएगा।" विकास बाबू ने नकल में कहा और लात-घूंसों और थप्पड़ों की वर्षा होती रही। नीलम को कुछ ध्यान न रहा। उसे इतनी ही सुध थी कि नीना का प्रेत साया अट्टहास कर रहा है—"संशय के रखवालों का विनाश होगा।"

नीलम को जब होश आया तो वह उठी और पलंग के पास बैठ कर पति का सिर सहलाने लगी। उनके पैर दबाए और मुन्नी को छाती से चिपटाए, एक करवट लेट गई।

सुबह उठ कर विकास बाबू के चरण पकड़ कर नीलम कहने लगी—"मुझे क्षमा करें, मैं तो बच्ची को सुला रही थी। 'जाओ, जाओ चन्दा जाओ, बाबा सोता है', गा रही थी। आप सुरेश जी की तरह संदेह को मन में स्थान देंगे तो, कैसे काम चलेगा!" विकास बाबू ने पैर पीछे हटा लिये। उनके पद-चिन्हों पर गरम आँसू की बड़ी दो बूंदें गिरीं, फिर भी विकास बाबू चुप रहे। मन में सुरेश का भूत कहने लगा—"सावधान, तिरिया-चरित है। नीना भी ऐसे ही स्वांग रचती थी।" जल्दी-जल्दी कुछ निवाले अपने मुंह में ठूंस कर, मुंह चढ़ा कर वे दफ्तर चले गये।

दफ्तर में, दिन-भर उन्हें चैन न मिला। मोटा रजिस्टर खोल कर, पेन हाथ में लिए, चश्मा चढ़ाए कुछ लिखने का प्रयत्न करते कि रात के सपने साकार हो जाते ! रजिस्टर की जिल्द की दराज़ से घृणित एक भाव पैदा होता। धीरे-धीरे वह भाव नारी की छाया ग्रहण करता और कुछ ही देर में छाया नीलम बन जाती। नीलम के पीछे एक और छायाकृति उभरती और नीलम को अपने पार्श्व में बांध लेती।

विकास बाबू सिहर कर सिर उठा लेते। चश्मा पोंछ कर, रजिस्टर बन्द कर रख देते और पेन को स्टैंड पर झुला कर कहते : "सखाराम, एक चाय !"

चाय का प्याला आता। (और ऐसे प्याले दो-तीन बार आये) चाय में परछाइयाँ नज़र आती—विज्ञान और नीलम बैठे खिलखिला रहे हैं।

तस्वीर चलती रहती। विज्ञान कह रहा था—"अच्छा नीलम, अब इजाज़त दो हमें। छः बज रहे हैं, तुम्हारे वे आने वाले हैं!"

'तो क्या हुआ! उनसे डरते हो तुम? मैं तो नहीं डरती। यह देखो।" और इतना कह कर नीलम ने साड़ी और ब्लाउज़ हटाकर अपनी पीठ दिखलाई—"यह देखो, पिछली रात मुझे पीटा है निर्दयी ने। विज्ञान, चलो न हम कहीं दूर चले जायें।"

"मनीजर साहब बुला रहे हैं आपको।" विकास बाबू हड़बड़ा कर उठे। चपरासी सखाराम का हाथ उनके कन्धे पर था—"तबीयत ख़राब है क्या? कब से बुला रहा हूं!"

एक सप्ताह तक विकास बाबू का यही क्रम रहा। यही मनोदशा रही। नीलम बैठी बिसूरती रहती। उसने विज्ञान से मिलना छोड़ दिया। उससे साफ़-साफ़ कह दिया। दिन-रात पति की परिचर्या करती रहती। पर विकास बाबू की शंकायें बढ़ती जा रही थीं। आशंका हमेशा बढ़ती है, कभी कम नहीं होती। दुनिया में यही एक चीज है, एक बार जिसका बीज बो देने पर बेल फैलती ही रहती है!

विकास बाबू दफ्तर जाते। प्लेट फार्म पर, ट्रेन पर, राह-रास्ते में, जहाँ-कहीं किसी जोड़े को देखते, संदेह की उन की सुरसा राक्षसियाँ दुहरे-तिहरे आकार धारण कर लेतीं। जाँच के लिए बेवक्त घर लौट आते। अथवा घर पहुँच कर इधर-उधर बाहर छिपे रह कर आहट लेते। दरवाजा खुलता तब तक तो, दौड़ कर पिछवाड़े के दरवाजे की जाँच करते।

एक सप्ताह बाद पीछे के दरवाजे को भीतर से बंद कर ताला लगा दिया।

पलंग पर बैठते तो तकिए-गिलाफ़ सूँघ कर देखते—"हाँ, पोमेड की गंध आ रही है। इत्र महक रहा है।"

और काल्पनिक सुगंधियों से उनका सिर भारी हो जाता। रसोईघर में बैठी नीलम मन ही मन सुलगती रहती और सिसक-सिसक कर रोती रहती। तब, डंडा उठाये विकास बाबू बानासुर बन कर आते—"तिरिया-चरित्र! मुझे सुरेश समझ रखा है तूने!" और डंडा बरसने

लगता—"क्या समझती है, मैं तेरी चालाकी खूब समझता हूँ। पत्ता खटकता है तो हवा का रुख पहचान लेता हूँ। पोस्टमेन को देख कर, कह सकता हूँ कि खुशी की खबर लाया है या मातम की।" अब थप्पड़ शुरू होते—"ये ब्लाउज़, ये चोलियाँ और ये नखरे! बता, यह कपड़े कहाँ से लायी? माँ ने दिए थे।.....और चाय के दो कप कैसे! सहेली आयी थी? या सहेला आया था, सच बता, झूठ क्यों बोलती है। सच बता देने पर मार-पीट बंद हो जाएगी। वरना तेरी हड्डी-पसली का इलाज करने वाला न मिलेगा...।"

धरती पर पड़ी नीलम के पास नीना की छाया आ-बैठती—"मैंने न कहा था। नारी का मन नारी ही जान सकती है। पुरुष का 'अहं' और उस का स्वार्थ नारी के कोमल मानस को नहीं जान सकता! वह (पुरुष) नारी जाति का अपमान है।"

और नीना की कल्पना-मूर्त्ति, नीलम के घावों को अपने आँसुओं से धोती रही और पुरुष के शक की शिकार—दोनों नारियाँ, एक दूसरी से लिपट कर रोती रहीं, रोती रहीं कि विधातामाता, सरस्वती, लक्ष्मी और चण्डी की आँखें भी भर आईं।

दो मास बाद—

नीलम सूख कर काँटा हो गयी थी। आँखें धँस गयी थीं और गालों की हड्डियाँ निकल आयी थीं। पास-पड़ौस में कानाफूसी होती थी और शरम के मारे वह बाहर निकलती नहीं थी।

एक दिन जब उस के मन में निश्चय हो गया कि वह चार मास से गर्भवती है तो, वह काँप उठी। ज़रूर विकास बाबू उसे मार डालेंगे। वे कभी न मानेंगे कि बच्चा उनका है।

कई दिन तक वह उलझन में पड़ी रही। क्या करे, क्या न करे। कहीं निकल जाने को जी चाहता था। तभी, बिदाई के वक्त की माँ की सिखावन याद आती—'पति का सुख ही तेरा सुख है, बेटी, हिन्दू-लड़की की डोली आती है और अर्थी जाती है। वह घर की शोभा है।'

'घर की शोभा है ! घर की शोभा है !' कह कर, तालियाँ बजाती हुई, नीना की छाया इधर-उधर नाचती और खिलखिलाती—'चलो, कम से कम, तुम तो मुझे पतिता न कहोगी ! मजबूरी पाप नहीं है, नीलम ।'

उस रात विकास बाबू जब लौटे तो, कमरा जाने कैसी दुर्गन्ध से भर गया । शराब पी कर आये थे वे । कदम लड़खड़ा रहे थे और हाथ-पैर नचाते गा रहे थे— 'जाओ, जाओ, प्यारे ! अब जाओ, खूसट जग जाएगा !'

उन्होंने नीलम को खाट की पट्टी से बांध दिया । फिर पीटा । उस की हथेली पर पलंग का पाया रख दिया और उस ओर ज़ोर दे कर बैठ गये ।

रात-भर नीलम बेहोश पड़ी रही ।

सुबह जब जगी तो देखा, दिन चढ़ आया है, पर चारों ओर अँधेरा छाया है ।

उस ने अपने भूत, भविष्य और वर्तमान पर विचार किया । माँ और पिता याद आये । बहन और भाई याद आये । मुस्कराती भाभियाँ याद आयीं और खिलखिलाती सहेलियाँ याद आयीं । विज्ञान, धरम का भाई सामने आया । नीना की छाया आई । सुरेश भी आया, नीलम ने घृणा से मुँह फेर लिया । फिर विकास बाबू की मूर्ति नज़र आयी । नीलम नेपहली बार पति को नफ़रत से देखा । लेकिन, उसका धर्म उसे धिक्कारने लगा और वह फूट-फूटकर रोने लगी ।

मुन्नी एक ओर सोयी थी । चारों ओर सुनसान था । दरवाजे बंद थे और राहें बंद थीं । अंधेरे और निराशा के कोलाहल के सिवाय, कहीं कुछ न था ।

सहसा भूकम्प-सा एक निश्चय उठा और उसकी मुट्ठियाँ बँध गईं । पलने में बच्ची सोयी थी । मच्छरदानी हटा कर हौले से उस का मुँह चूमा । दो-तीन बार चूमा ।

और मन ही मन प्रार्थना की कि यह सुखी रहे । लेकिन, बड़ी

होने पर इसे सुरेश या विकास-जैसा पति न मिले। चाहे विधवा हो जाए, चाहे कुँआरी रहे।

फिर मेज़ पर रखी पति की तस्वीर को छाती से चिपटा लिया और सिसक-सिसक कर धरती-आसमान को भिगोने लगी। मेज़ पर तस्वीर रखते हुए गुनगुनायी—'हे गौरी, तूने जिसे दिया था, उसको चिरंजीवी रखना।' और अनेक प्रकार से अपने पति की कुशलता की कामनाएँ करती हुई, वह रसोईघर में आयी। मन का निश्चय घना होता गया।

एक झटके में केरोसिन का डिब्बा उठा लिया और सिर से पैर तक उससे नहा लिया। माचिस हाथ में ली कि विचार आया–'पड़ोसियों ने देख लिया तो, बचा लेंगे। उसने धीमे से खिड़की बंद कर दी और वक्त पर पानी न मिले, इसलिए पानी के मटके को लात से गिरा कर, फोड़ दिया।

माचिस पर काड़ी छुआने जा रही थी कि मटके की आवाज़ से बच्ची जाग गयी और ज़ोर से चिल्ला कर रोने लगी।

नीलम ने उस के प्रति मन को कठोर कर लिया और दो पल के लिए आँखें मूंद लीं।

लेकिन उसे ख़याल आया, यह भूखी है। मेरी मुन्नी भूखी है! अन्तिम बार उसे दूध पिलादूं! दो घण्टों से भूखी है और उसके उरोजों में एक ज्वार गर्जन-तर्जन करने लगा और बेभान-सी दौड़ कर, वह दूसरे कमरे में गई और मुन्नी को चूम-चूम कर कलेजे से चिपटा लिया। बच्ची चुबुक-चुबुक आवाज़ कर दूध पीने लगी। दो-एक घूंट लेकर वह होठ हटा लेती और दूध के कुल्ले कर, माँ की तरफ़ देखकर मुसकराती।

नीलम के केश बिखरे थे। अस्त-व्यस्त कपड़े केरोसिन से तर थे। वह जम कर धरती पर बैठी थी कि धरती फट जाएगी या वह स्वयं आकाश को उलट देगी। वह पहाड़ों की सूनी दोपहरी की तरह ख़ामोश थी।

वह मौन थी, लेकिन जब बेबी हँसी, बार-बार हँसी तो वह चुप

न रह सकी और उस के होंठ हिले !

पीछे से एक गहरी काली परछाईं उठी। नीना की आवाज़ आयी—

"पलायन कर रही हो ? लेकिन, तुम्हीं उस दिन कहती थी, तुम नारी हो, माँ हो। पति का न सही, संतान का मोह तो तुम्हें होना ही चाहिए। और मैं कहूँगी नीलम, अपने ही लिए न जीओ। तुम सिर्फ औरत ही नहीं हो, केवल पत्नी ही नहीं हो, माँ भी हो ! जगदम्बा हो, हो न ?......तो, पालन करो, संहार के रास्ते क्यों जा रही हो !"

और नीना की छाया तालियाँ बजाती रही और छमाछम नाचती रही।

● ●

७ जिन्दगी

फिर शेषप्पा की पीठ पर एक हंटर पड़ा और वह चिल्लाया—'अरे, बाप रे ! माफ़ करो सा' ब अब नेई करिंगा। गलती हो गया। आपकूँ माफ़ी करना माँगता साब ! हम गरीब लोगन हैं......'

'गरीब लोगन है तो टुम मुंबई में काय को आना सकता ? टुम हलकट के वास्तीज है मुम्बई ? हमकूँ नहीं जानता, हम कौन हैं ? टुम दादा लोगन (गुण्डा) का दादा (पिता का पिता) है हम। टुमारा एकन्दर चटनी बनाकर रख देंगा। टुम साला तड़ीपार (बम्बई से निर्वासित) लोगन हमेरा शहर में काय कूँ आया ? आया तो, गपचप बैठना माँगता।'

इन्सपेक्टर बटाटावाला ने अपराधी शेषप्पा को चारों बाजू पीटते हुए कहा।

'अब नेई आईंगा साब ! सच बोलता है।'

'फिर से बोम मारता है ?'

'नेई साब, बोम काय कू मारिंगा ? आपण सीधा-सीधा लोगन है।'

'चोप रहो बडमास ! गपचप बैठो !'—इन्सपेक्टर बटाटावाला के लिए स्थानीय सरकार की ओर से आदेश था कि राष्ट्रभाषा का अधिकाधिक व्यवहार रखे, सो बटाटावाला राष्ट्रभाषा की चटनी बना रहा था !

'तूँ काय को रड़ता (रोता) है रे ?'—क्रिश्ना ने शेषप्पा को झकझोर कर पूछा —'हमकूँ सोने नेई देना माँगता ? हम तो पैले ही

पाँस दिन से शिख (बीमार) होता। दारू पीकर काय कूँ बोम पाड़ता है रे ?'

शेषप्पा की नींद उचट गई। उसने आँखें फैलाकर देखा, और उसे खुशी हुई यह जानकर कि वह बजाय पुलिस-हवालात के, माहिम-खाड़ी की अपनी झोंपड़ी में है। फिर भी, सचमुच उसने बुरा सपना देखा !

—बात यह थी कि आज शाम शेषप्पा, नागैया, देवैया, केलप्पा, दगडू और पिल्लै ने मिलकर क़रीब दस बाटली (बोतल) दारू बेचा था और स्वयं भी खूब छक कर पिया था ! और मलाड-उपनगर में, जहाँ शराब केरोसिन की तरह खुली बिकती है, वह बड़ी शान से निकला था—उसके आस-पास उसके भागीदार (पार्टनर) थे। जिनकी जेबों में प्राणघाती छुरे थे। जिनके गले में गहरे काले, पीले, नीले, हरे और लाल रंग के गलूबंद थे। जिनके पतलून की निचली पट्टियाँ राजकपूर या दिलीप की तरह, ऊपर की ओर कई बार मुड़ी थीं और पैर बिना जूते के थे।......

'काय कूँ रे ? बोम क्यों मारिंगा ? झोंपता (सोता) क्यों नेई ?'—किश्ना उसके रूखे और बेतरतीब बालों में अपनी उँगलियाँ फिरा कर, उससे दुलारमयी वाणी में पूछ रही थी।

अपने को पुलिस से सुरक्षित देख, और किश्ना को पास में पाकर शेषप्पा मुस्करा दिया और बोला—'असाच (ऐसे ही) सुपना देखा था, किश्ना !'

'होय, बरां ! झोप।'

शेषप्पा आज्ञाकारी बालक की तरह घुटने मोड़कर सो गया। लेकिन, फिर यह अनुमान लगाकर कि अब किश्ना मोमबत्ती को फूँक मारकर, अपनी फटी पाथरी पर सो गई है, शेषप्पा ने आँखें खोल दीं। उसकी टूटी-फूटी कुटिया में अँधेरा छाया था और छत की जगह रखे टीन के टुकड़ों पर टप्-टप् कर गिरती बूँदों से एक अजीब तान गूँज रही थी। बान्द्रा की खाड़ी में उठती हल्की लहरियों की ध्वनि आ रही

थी और पास के दलदल में मेंढकों की टर्राहट, एक सुर, एक लय में गा रही थी, जिस प्रकार, ठीक समय पर रेडियो-ब्राडकास्ट होता है, उस प्रकार नियत समय पर यह मेंढक टर्राते और समय-असमय शेषप्पा की नींद के ग्राहक बन जाते !

उसने अखबार में लिपटी ईंटों के तकिये-नीचे रखी अपनी माचिस टटोली और एक बीड़ी सुलगाई ! फ़ासफ़ोरस की मंद रोशनी में उसने देखा क्रिश्ना को फिर से नींद आ गई है और सामने की दीवार पर उसकी परछाईं पड़ रही है। उसकी नुकीली नाक स्पष्ट दिख रही है और उसके उभरे हुए पेट की आकृति दीवार पर ज्यों की त्यों अंकित हो गई है।

काड़ी बुझ गई और छायाकृति ओझल हो गई।

क्रिश्ना गर्भवती है। तीन-चार मास में, बान्द्रा स्लाटर-हाउस के पास बसी उस कुटिया में, एक और अभ्यागत-प्राणी आएगा, फिर शेषप्पा की दुनिया में एक नया रंग लहराएगा। वह मुस्करा दिया, और फटी चटाई के बिछौने और टूटी कुटिया के इस नम कोने में भी उसे यह मुस्कान मीठी लगी। इस मिठास को बड़ी देर वह अपने मुँह और जिगर में थामे रहा ! उसकी नज़रों में, पिता-रूप में अपना वह चित्र स्पष्ट हो आया, जिसमें वह गैर क़ानूनी शराब बेचने वाला शेषप्पा नहीं था, एक नन्हें बाबा (बच्चे) का पिता था पिता ! डैडी, फादर, बाबू काका, भाई जी, बापू आदि कितने सम्बोधन-शब्द, जो उसके कानों में आज तक आते रहे हैं, इस घड़ी, जैसे बारी-बारी से प्रत्यक्ष सामने उपस्थित होकर, समवेत पुकार में अपने को ग्रहण करने के लिए उससे निवेदन कर रहे हैं ! उसका हृदय गद्गद् हो गया और उसने दूसरी काड़ी सुलगाकर मोमबत्ती जला दी।......... कुटिया में एक हल्का प्रकाश रोशन हो गया। मोमबत्ती हाथ में लिए वह क्रिश्ना के निकट आया और उसके मुख पर प्रकाश डालकर देखा—मुख पीला पड़ गया है और होठ कुछ कृष्ण वर्ण हो गए हैं, फिर भी क्रिश्ना के चेहरे का आकर्षण कम न हुआ है। पहले, यौवन की चपल मुखरता थी, अब

मातृत्व की गंभीरता है, जिसने उसे द्विगुणित छवि-वैभव प्रदान कर दिया है !

माहिम की खाड़ी के पार, दूर कहीं समन्दर की इकहरी साँसों से हवा का एक झोंका आया और मोमबत्ती बुझ गई। शेषप्पा के जी में आया कि हवा के इस झोंके को पकड़ कर दबोच दे, उसका गला दबा दे, लेकिन जब उसे यह एहसास हुआ कि हवा 'हवा' है और उसपर उसका कोई बस नहीं है, तब, पहले तो वह झिझका, फिर अपनी अजानी मूर्खता और जल्दबाजी पर मुस्करा दिया।

विचारों का प्रवाह फिर बह निकला—अब दारू-बारू का धंधा छोड़ देना होगा। लेकिन, वह भी क्या करे ? पिछले पाँच से अधिक वर्षों से उसने दर-दर की खाक छानी है। क्या-क्या नहीं किया ? फिर भी न उसे फुटपाथ पर सोने की जगह मिली और न उसे भीख मिली। जब वह आठ आने रोज़ में मजदूरी करने लगा तो मालूम हुआ कि अँधेरी, कुर्लारोड, वरसोवा, जोगेश्वरी, गोरेगाँव, वलनाई, रतौरी, बोरीवली आदि स्थानों में शराब का व्यापार खूब पनप रहा है, तो उसका कमज़ोर मानव-मन लुभा गया और वह बंबई के इस 'कुटीर-उद्योग' में लग गया। उसके प्रवेश-पर्व पर गुरु नागैया उसकी पीठ पर एक धौल जमाकर बोला—'देख रे अप्पा, हम कूँ जान लेना हों। अँधेरी से विरार तक हमेरा नाम, लोकल-गाड़ी की तरह चलता है, हाँ ! हमकूँ धोका-बोका दिया तो मार-मार कर हड्डी-पसली एक करिंगा। हमने बड़े-बड़े जुमादार का पटिया खलास किया है। कमीश्नर गैलन जी बन्दूक वाला से हमेरा चाय-पानी चलता है।'

शेषप्पा दीक्षित हुआ और सुखी हुआ। उस दिन से उसे पेट भर भोजन और चैन की नींद मिली। क्रिश्ना को भर-पेट भात और नई साड़ी मिली। अब दोनों हर शुक्रवार को कस्तूरबा टॉकीज में पहला शो देखते और थियेटर-हाल में 'पेशल-चा' मँगा कर पीते !

शेषप्पा ने करवट बदली और विषय-वस्तु ने भी अंगड़ाई ली। समस्त विचार-मंथन का सार सामने आ गया—'साला आपण लोगन

का जिन्दगानी भी कैसा है? जरा-सा निमोनिया हुआ कि माणुस मर जईंगा। मुंबई आया है तो खाईंगा, पीएंगा, मौज मारिंगा। भूक मरना मांगता, तो मुलुक में क्या बुरा था?

अपने अस्तित्व और जीवन-यापन के लिए आविष्कृत यह तर्क शेषप्पा को अकाट्य लगा।

आखिर दारू के अपने बिजनैस में वह अकेला तो है नहीं? और भी जोड़ीदार हैं। बड़ी मूछों वाला नागैया है। जिसकी एक पुकार पर माटुंगा से बिरार तक के कई सौ दादा जान पर खेल जाएंगे।....फिर नागैया की लड़की!—शेषप्पा का दिल वह जिस तरह बहलाती है, उसे देखकर तो, वह नाता नहीं तोड़ सकता।......और देवैया, जितना काला वह बाहर है, उससे अधिक भीतर है। उसे मक्खी मारने में देर लग सकती है पर आदमी को मारने में नहीं! उसने कई बार एक सिगरेट या चाय-प्याले के लिए छुरे मारे हैं! ऐसा साथी शेषप्पा के पास हैं, फिर क्या भय?....और केलप्पा भी तो उसके दल में है, वह तीन बार बद्री-केदारम्, डाकोरम् और रामेश्वरम् हो आया! उसे भी आखिर पेट के लिए, खाली बाटली भरने और भरी बाटली खाली करने का अनचाहा कार्य करना पड़ता है। और जिस काम में पुलिस के भय की छाया हर समय मंडराती हो उसे, जानकर कौन करना चाहेगा? परन्तु पेट आखिर पेट है और उसके आगे कोई कानून और कोई ईमान नहीं चल सकता! दगड़ू तो खास पुलिस से मिला है, इसीलिए उसे दल में शरीक किया गया है। उसकी ड्यूटी यही है कि पुलिस की गतिविधि का निरीक्षण करे और जमादार राधोबा को बँधा हुआ हफ्ता (साप्ताहिक रिश्वत) हाथों ही हाथों में पहुँचा दे। सो, इस प्रकार, दगड़ू कानून-जोड़ने वालों और कानून तोड़ने वालों के बीच चाँदी की एक कड़ी है। दीवार की वह पहली, नाजुक ईंट है, जिसके खिसकते ही दीवार अर्राकर गिर जाएगी!... और इन लोगों की अच्छाई-बुराई से मुझे क्या करना?—शेषप्पा ने सोचा—रोटी चलती है और दिन निकलते हैं, यही क्या कम है?

क्रिश्नाम्मा के कोई सातवाँ महीना होगा। मद्यनिषेध का नया

कानून आ गया कि स्थानीय सरकार संदेहमात्र पर भी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकती है, जिसकी कोई जमानत नहीं। इससे शेषप्पा के दल की आय, इस प्रकार एकदम गिर गई, जिस प्रकार, कोई ढेला ऊपर फेंक देने पर नीचे गिरता है।

उसने क्रिश्नाम्मा को आज तक नहीं बताया कि वह क्या धंधा करता है? किन लोगों के साथ रहता है? और कहाँ-कहाँ जाता है? सो जब आय गिरने लगी तो क्रिश्ना का चिन्ता करना स्वाभाविक था। खुद शेषप्पा का चेहरा भी उतर गया था और वह खोया-खोया-सा रहता था और उसपर भी उसे लगता था, नए कानून के पंजे उसकी ओर बढ़े चले आ रहे हैं! सारी रात उसका बाहर रहना आवश्यक था और सारी रात उसका भीतर रहना जरूरी था, क्योंकि क्रिश्नाम्मा का स्वास्थ्य इधर-उधर होता रहता था और उसे बारम्बार सहारे और विश्वास की जरूरत पड़ती थी।

बान्द्रा स्टेशन से उत्तर की ओर जाने वाली लोकल गाड़ी की खट्‌र-खट् उसे बड़ी देर तक सुनाई दी, जैसे कोई परिचित मित्र अपनी कथा कह रहा हो! यह तो बोरीवली की लास्ट-ट्रेन है। बोरीवली की याद आते ही उसे दूधवाले भैया रामसहाय की याद आई, जिसका बिल बनिए के पेट की तरह बराबर बढ़ता जा रहा था, और इस कर्ज की कल्पना स्थान-स्थान पर उसकी देह का दंशन करने लगी। कहीं, वह घर से बाहर हुआ, और भैया ने उसकी पत्नी को पैसे के लिए परेशान किया तो? और भैया न सही, खोली वाला पठान लाला ही आया, लाला न सही, पाव रोटी वाला शकूर ही आया। और वह भी न सही क्रिश्नाम्मा को ही अचानक नर्स या डॉक्टर की ज़रूरत पड़ी....? शेषप्पा का सिर चकराने लगा!

और कालान्तर में जब कानून का पंजा फैलकर बड़ा हो गया, उसका आकार-प्रकार और उसकी कठोरता बढ़ गई तो, दल ने एक दिन फैसला दिया कि उसके सदस्यों को अब दारू के बजाए और किसी व्यापार में लगना चाहिए। दगड़ू की सम्मति से 'जेब मँतरने' (जेब काटने) का बिल पास हुआ। दगड़ू ने तर्क-तूणीर का आखरी अस्त्र छोड़ते हुए कहा

कि मान लो, बीड़ी का यह बंडल है। तुम्हारी जेब से मेरी जेब में आ गया तो, इसमें पाप कौन सा? यह मरा-मिटा तो नहीं? किसी की जान तो, नहीं गई इसमें? कहीं न कहीं रहा तो सही। थोड़ी देर तुमने रखा, अब मैं उठा लेता हूं इसका भार!

दल पर दगड़ू का मंत्र चल गया।

परन्तु शेषप्पा का मन नहीं माना। वह 'जेब कतरे' की उपाधि लेकर कुख्यात नहीं होना चाहता था। उसको बेमन देख दगड़ू बोला—'शेषप्पा कुछ कामों के लिए दिल चाहिए, कुछ के लिए हिम्मत और कुछ काम मर्जी से होते हैं।'

'दिल का काम है नागैया की लड़की से तेरी मुहब्बत। हिम्मत का काम था बाटली बेचना। अब मर्जी का काम है जेब मँतरना, जैसी तेरी इच्छा। पहले थोड़ी हिम्मत 'चाहिए'। फिर तो, आदत पड़ जाएगी और तेरी उँगलियाँ लोगों की जेबों पर इस प्रकार चला करेंगी, जिस प्रकार किसी सेठ की लड़की की उँगलियाँ सितार पर चलती हैं।...'

फिर दगड़ू ने कुछ इशारा किया और दोनों खिलखिला दिए।

देवैया अब तक चुप था, अतः कुछ कहने का अपना अधिकार और अवसर खोना नहीं चाहता था, बोला—'तू दगड़ू बात मारता है। खुद चोरी करिंगा तो हम जानिंगा।'

दगड़ू ने उसी उत्साह से उत्तर दिया—'चलो, सामने रहा ब्रजवासी हिन्दू-होटल। अभी किसी भैया-मारवाड़ी को मँतरता हूँ।'

'नहीं –'–दोनों ने एक स्वर में, सहसा, कहा—'नाके वाले ईरानी रेस्तराँ में सिगरेट का डिब्बा उड़ाना माँगता।'

दगड़ू ने इस आशय में हाथ से चुटकी बजाई कि यह तो बाएँ हाथ का खेल है।

एक-एक कर तीनों ईरानी रेस्तराँ की टेबल पर जम गए। फिर दगड़ू उठा और बड़े ग़ौर से चीजों को देखने लगा। कई प्रकार की पेटेन्ट दवाइयाँ, टुथपेस्ट, साबुन, फलों के रस और शरबत शीशे की अलमारियों में सजे हुए थे। काउन्टर पर मोटा ईरानी सेठ, जिसका वज़न

कम से कम तीन सौ पौंड़ होगा, बैठा था। वह अपने पास रखे, खुले डिब्बे से बिस्कुट निकाल कर मुंह में रखता जाता था, और ग्राहकों से पैसा लेता जाता था। रेस्तरां में काफ़ी भीड़ थी।......

—एक रंगीन तिपाई पर कई प्रकार की सिगरेटों के चित्र-विचित्र डिब्बे स्तम्भाकार में चुने हुए रखे थे। दगड़ू ने उनमें से एक-दो उठा लिए, जैसे उन्हें परख रहा है, और कनखियों से इधर-उधर देखा। कोई बैरा या ग्राहक उसे नहीं देख रहा था। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि लोग मुझे देख रहे हैं, परन्तु, वास्तव में ऐसा नहीं होता, हरेक आदमी अपनी धुन में मस्त रहता है। यों कभी, किसी स्त्री या पुरुष की वेशभूषा या प्रदर्शन में कोई विचित्रता हुई तो बात अलग है! विचित्रता में एक ध्वनि होती है, जो लोगों का ध्यान-भंग करती है और दृष्टि को आकर्षित करती है।

शेषप्पा साँस थामे देख रहा था—दगड़ू एक डिब्बा अपने कोट की जेब तक ले गया पर, उसे जेब में डाला नहीं। देवैया ने धीमे कहा—'उसने अंदाज लगाया है कि कितने पलों तक हाथ और डिब्बा जेब तक पहुँच जाएगा, और हाथ में तुरन्त उसी जात का कौन-सा दूसरा डिब्बा लेना होगा....।'

फिर उसने इतना ही देखा कि दगड़ू तिपाई पर डिब्बे वापस रख रहा है। वह बड़ी गम्भीरता पूर्वक लौट आया।

'हमने पहले ही कहा था, बात करना आसान है।' देवैया ने कहा।

'खाली-पीली डींग मारिंगा'—शेषप्पा बोला।

अच्छा भाई अच्छा।'

तीनों रेस्तरां के बाहर आए, और पनवाड़ी से पान-बीड़े खाए गए। देवैया ने एक दुअन्नी निकालकर कहा—'भाई, एक पैकेट चार मीनार देना।'

'चार मीनार क्यों, ये अपना गोल्ड फ्लेक पीओ, दोस्त!—दगड़ू ने तपाक से डिब्बा पेश करते हुए कहा—'जब तक दगड़ू जिन्दा है तुम्हें

किस बात की कमी ?'

दोनों साथी चकित रह गए। पान वाले ने पूछा—'सेठ, हिन्दुस्तानी खालिस बोलते हो। यू. पी. में रहे हो ?'

दगड़ू ने पहले तो बड़ी शान से सिगरेट सुलगाई फिर मुंह के बीड़े को एक ओर दबाया और उसी ठाठ से बोला—'जी, मैं नैनी सेंट्रल में सात बरस वायसराय का मेहमान रहा हूँ।'

—सुनते ही चारों व्यक्तियों के मुंह से हंसी छूटी।

और दूसरे दिन जब देवैया भी 'लक्स टायलेट का चूरा' चुरा लाया तो, राघोबा की होटल में बैठे शेषप्पा ने अपने साहस को धिक्कारा। बहुत सोच-विचार और आन्तरिक द्वन्द्व के बाद भी उसने पाया कि भीतर दिल में कोई चीज़ है, जो उसे चोरी करने से रोक रही है। किसी का हाथ—चूड़ियोंवाला हाथ, उसके हाथ को थाम रहा है, यह क्रिश्ना का हाथ था जैसे ! यह नागैया की कुंआरी बेटी का हाथ था, जो उसके सामने चाय का कप रख जाया करता था। लेकिन, दूधवाला भैया, किराया वाला लाला, मेटरनिटी होमवाली नर्स......कच्छी पंसारी—इनमें से हरेक एक-एक कर उसके सामने खड़ा हो गया, और शेषप्पा को उनसे नजरें चुरानी पड़ीं ! ...उसने मेज के गोल संगमरमर पर जोर का घूंसा मारा और सामने रखा चाय का प्याला अपनी तश्तरी में उलट गया। शेषप्पा ने पैसे चुकाये और बाहर आ गया। उसने निश्चय किया कि वह भूखा नहीं रहेगा, वह बेकार नहीं रहेगा, वह ग़रीब नहीं रहेगा, वह हिम्मत रखेगा और दगड़ू की तरह रहेगा—अच्छे कपड़ों में, अच्छे मकान में, अच्छे मोहल्ले में ! उसके सम्मुख, बच्चे को गोद में लिए भूखी थकी-हारी, कृश-वदना क्रिश्ना की तस्वीर खड़ी हो गई ! नहीं, नहीं, नहीं !—उसने कहा।

उसने सड़क को क्रास किया, क्योंकि वह उस पार की पटरी के 'होटल इम्पीरियल' में पहुंचना चाहता था। होटल इम्पीरियल—जहां बढ़िया टेबलें, बढ़िया चाय-काफी, बढ़िया पदार्थ, बढ़िया ग्राहक और हर चीज़ बढ़िया है और जहां बिस्कुट के ढेरों पैकेट और दूध के अनगिनत

डिब्बे सजे हैं, बिस्कुट जो क्रिश्ना को पसन्द है और दूध का डिब्बा जिसकी जरूरत उसे अपने शिशु के लिए है।..........'बीड़ी का बण्डल तुम्हारी जेब से मेरी जेब में आ गया तो इसमें पाप कौन-सा?......किसी की जान तो नहीं गई......शेषप्पा कुछ कामों के लिए दिल चाहिये...... कुछ के लिए हिम्मत और......' उसके कानों में दगडू के वाक्य गूँज रहे थे। उसे ऐसा महसूस हो रहा था, मानो उसके शब्द अब भी ईथर में मँडरा रहे हैं और उसके कान रूपी रिसीवर उन्हें पा रहे हैं!

उसने लम्बे डग भरे और होटल की सीढ़ियों तक पहुँच गया। अचानक किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। चूड़ियां खनखनाईं। उसने पीछे मुड़ कर देखा—कोई जैसे उसे रोक कर, ओझल हो गया। छि......हिम्मत रखो। 'भूखे और बेकार आदमी के अपराध पर कोई कानून नहीं लगता। सरकार काम दे, काम नहीं देती तो, हमारे अपराधों की जिम्मेदारी ले।'—नागैया कहता था। लालबावटे वाले एक बाबू का भाषण उसने सुना है।

होटल में बड़ी भीड़ थी। प्रत्येक ग्राहक को प्रविष्ट होते ही चारों ओर दृष्टि डालकर खाली जगह खोजनी पड़ती थी। एक ओर 'खाली मेज के लिए प्रतीक्षक' ग्राहकों का 'क्यू' लगा था। विविध भांति के खाद्य पदार्थों की गंध उड़ रही थी। सुन्दर युवतियों के समूह चहचहा रहे थे। पास के कालिज वाले युवक किसी विषय पर जोर-जोर से बहस कर रहे थे। शेषप्पा को इनमें से किसी में रस नहीं था।

उसने अपने शिकार और अपने शिकारियों को निगाह में लिया।

एक हल्के अँधियारे कोने में बिस्कुट के पैकेट और दूध के डिब्बे रखे थे। शेषप्पा का रोम-रोम खिल उठा! क्रिश्ना देख कर कितनी खुश होगी। उसने पुनः दगडू की तरह अपने लक्ष्य का अनुमान लगाया। जिस प्रकार एक कुशल तीरन्दाज अपना निशाना साधता है, शेषप्पा ने सफलता पूर्वक बिस्कुट का पैकेट कोट की जेब के हवाले कर दिया। उसे छुरा मारने का अभ्यास था, पैकेट मारने का नहीं, सो वह भी आज हो गया—सोच कर शेषप्पा मुस्करा दिया। फिर उसकी उँगलियों में सनसनाहट

हुई और इस बार दूध का डिब्बा पकड़ में आया, जिस प्रकार चतुर संपेरा सांप को पकड़ कर पिटारे में बन्द कर देता है न ! हां.........। शेषप्पा को अपनी दूसरी ओर की जेब भी भारी लगी। इसके पश्चात् वह एक टेबल पर चाय पीने लगा। चाय जब पी चुका तो चुकारे के लिए काउण्टर पर आया। उसके पीछे, उसकी टेबल का बैरा था, उसने पुकार कर कहा—'एक इसम चार रुपै सोदा आणा।' (एक व्यक्ति चार रुपये चौदह आने)।

लेकिन शेषप्पा का ध्यान कहीं और था। उसने दुअन्नी बढ़ाई तो बैरा रास्ता रोक कर खड़ा हो गया और बोला-'बिस्कुट और डिब्बा का पइसा नहीं देगा ?' उसने अपने मालिक से सब हाल बताया और माल बरामद करने के लिए, झुक कर शेषप्पा की जेब में हाथ डाला था कि शेषप्पा का छुरा उसकी अंतड़ियां खींच लाया।

'खून-खून'......'पुलिस-पुलिस' का शोर उठा।

शेषप्पा ने रास्ता निकाल लेने की कोशिश की, किन्तु बम्बई की एकत्रित भीड़ की गिरफ्त से छूट जाना, यमदूत के दाढ़ में से निकल आने के बराबर है। अब तक उस पर लात घूंसे और जूते की मार पड़ती रही और जब चौराहे के जमादार ने देखा कि 'दादा' अकेला है तो, वह बड़ी अकड़ से भीड़ को चीरता, जनता-जनार्दन को गालियां देता हुआ आया और उसने अपनी बही में बड़ी देर तक जाने क्या-कुछ लिखा। शेषप्पा ज़मीन पर पड़ा था। उसकी जेब का पैकेट टूट कर सड़क पर बिखरा था और हरेक बिस्कुट उसके बहते हुए खून से सना जा रहा था। बेकारी की काली सड़क पर, उसके रक्त का गहरा लाल रङ्ग बिस्कुट के टुकड़े और दूध की पतली सफेद धार रलमिल रहे थे।

जब किसी ने जमानत न दी तो, शेषप्पा पुलिस के पिंजरे में पड़ा रह गया। नागैया, केलप्पा, देवैया, पिल्ले सब के नाम पते उसने पुलिस के 'हुकुम साहब' को दिये, पर सब एक-एक कर बदल गये कि कौन शेषप्पा ! हम तो उसे नहीं जानते।

हारकर उसने एक सिपाही को अपनी मुक्ति पर अच्छी-सी रकम

देने का वचन देकर बान्द्रा भेजा कि क्रिश्ना ही कुछ दौड़-धूप करे। उसके मामा का बेटा पार्ले बिस्कुट कम्पनी में काम करता था। शायद वही काम आ जाये। लेकिन, सिपाही खाली लौट आया—'हमने बड़ा बख्त खोया। खोली पर ताला था।' पास में बतलाया—'शेषप्पा का औरत दूसरे मरद के साथ चला गया है।'

शेषप्पा को पहले अविश्वास फिर विश्वास हो गया। आखिर औरत की जात! क्रिश्ना ने आज शायद बदला लिया नागैया की लड़की से मन मिलाने का! पर ऐसा क्यों कर हो सकता है? वह क्रिश्ना को अच्छी तरह जानता है। आज दो साल से वह उसके साथ है। अजब बात है! क्या वह क्रिश्नाम्मा को नहीं पहचानता? उसका चेहरा, हाथ, पैर, तन-बदन, कपड़े, उसकी बोली, उसकी हँसी—सबसे वह पूर्णतया परिचित है। वह जानता है कि उसे बिस्कुट पसन्द है, इसीसे तो उसने पैकेट उड़ाया था। वह जानता है कि उसके गर्भ में उसका होनहार बेटा है, जिसके लिए दूध की जरूरत है, इसीलिए तो उसने डिब्बा चुराया था!

—अपने लिए मैंने क्या चुराया? शेषप्पा ने दोनों हाथों की हथेलिया फैलाकर स्वयं से पूछा। कुछ नहीं। फिर भी औरत चली गई। दुनिया में कोई किसी का नहीं है। जब अपनी औरत ही अपनी न रही! उसे अपने माता-पिता की याद आई। आज उसकी मां होती तो, अवश्य उसे बचा लेती। बचपन में किस तरह वह उसे ढूँढ़ती, भटकती फिरती थी! मां……! शेषप्पा की आंखें भर आईं और उसका सिर चकराने लगा।

न्यायालय के कमरे में शेषप्पा ने दूर तक नजर डालकर देख-लिया कि उसके साथियों में से कोई उपस्थित है? फिर उसे यह भी आशा थी कि क्रिश्नाम्मा या नागैया की बेटी ही आई हो। हो सकता है, आखिर औरत का दिल इतना कठोर तो नहीं होता!

—तब उसे यह देख विस्मय हुआ कि क्रिश्ना सरकारी वकील और जमादार के पास बैठी है। उसका चेहरा उतरा हुआ है और वह बराबर शेषप्पा को देख रही है। जब नजरें मिलीं तो, क्रिश्नाम्मा ने

मुँह फिरा लिया। ऐसी होती है स्त्री-जाति! शेषप्पा का लहू खौलने लगा!

शेषप्पा पर लड़की को भगाने और होटल इम्पीरियल में चोरी करने का अपराध लगाया गया था।

पहले सरकारी गवाह मुसम्मात क्रिश्नाम्मा का बयान हुआ—'यह माणुस हमको भगाकर लाया था', इसके बाद उसने आंखें नीची करलीं—'बोला, हम तुझे बम्बई में अच्छा-अच्छा ,खाना और कपड़ा देंगा। हम क्या करिंगा साब! हम इसके साथ चला आईंगा नहीं तो यह हमको मार डालिंगा?'...

'क्रिश्ना तुझे पराए मरद के साथ जाना मांगता तो, हमेरा बदनाम तो नहीं करना'—शेषप्पा आगे न कह सका। फिर भी, सिसकी रोककर बोला—'विष्णु-मन्दिर में तुम अपनी कुशी-कुशी आया होता!'

'अपना शादी होयंगा और साब, हम खुशी-खुशी न जाईंगा तो क्या करिंगा?'

—क्रिश्ना के ये शब्द सुनकर सरकारी वकील के चेहरे का रङ्ग उड़ गया।

शेषप्पा की आंखों से बड़े-बड़े आंसू बह रहे थे, जिन्हें देख क्रिश्ना जैसे व्याकुल हो चली। बोली—'रड़ता क्यों रे? हम तुमेरा बदनामी काय कूँ करिंगा? जमादार बोला, क्रिश्ना, सरकार में बोलना मांगता कि शेषप्पा हमको भगाकर लाया, शेषप्पा छूट जाईंगा।'......और सरकार साब (जज साहब)! पुलिस लोकन ने हमको बोत-बोत डराया—धमकाया, रात में अपना औरत बनाया! हम क्या करिंगा साब, हमको बी मरना मांगता......'

क्रिश्ना थर-थर कांप रही थी और फूट-फूट कर रो रही थी। जज ने उसे किसी संस्था की सुरक्षा में छोड़ देने का हुक्म दिया और तारीख पेशी बदल दी।

क्रोध, पश्चाताप और आत्मग्लानि के कारण, शेषप्पा अर्ध-विक्षिप्त-सा था। हवालात की कोठरी में इन्सपेक्टर दारू वाला उसे

कोस रहा था। कभी मीठी और चिकनी-चुपड़ी कहता, कभी डांट-डपट दिखाता। लेकिन शेषप्पा ने स्वीकार नहीं किया कि वह क्रिश्नाम्मा को भगा कर लाया है—'वह हमेरा औरत है, साब !'

'साला''''''भूठ बोलता है ? अपनी भैन''''''को औरत बतलाता है।' यह जब सुना तो शेषप्पा ने उछल कर दारूवाला की नाक पर जोर का घूँसा मारा।

फिर तो उसकी पीठ पर, उसके शरीर पर लात-घूंसों और हंटरों की वर्षा होने लगी। उसकी चीख बन्द कोठरी को भेदकर रात के वीराने में दूर तक भटकने लगी—'अरे बाप रे ! माफ करो सा'ब।'''''अब हम मुम्बई में कबीज नेई आईंगा सा'ब। हम गरीब'''लोगन हैं...।'

बाहर इस अनाचार से बेखबर सभ्य संसार सुख की नींद सो रहा था, और उसका न्याय खुर्राटे भर रहा था, हालांकि, उसकी पीठ पर कोड़े पड़ रहे थे !

८ अपराध किसका ?

प्रभाकर इस बार जब पूना से लौटा, तो उषा उसके साथ थी। दोनों टैक्सी से उतरे। नौकर ने नीचे बैठक के कोने में दोनों का सामान रखा, तब तक संध्या, जो ऊपर खिड़की से देख रही थी, आ गई। उसने कुछ लजाकर और कुछ मुस्कराकर अपने पति का स्वागत किया और उषा से गले मिली।

कालिज के दिनों में, उषा और संध्या की मैत्री कहावत बन गई थी। दोनों में कई बातों में समता थी और आकर्षक पदार्थों के प्रति समान ममता थी। अन्तर केवल इतना ही था कि उषा ज़रा गोरी थी और संध्या तनिक साँवली थी। फिर भी उषा में जहाँ रूप था, वहाँ संध्या में रस था। इस प्रकार दोनों लड़कियाँ मिलकर, किसी पूर्ण नारी की एक सजीव तस्वीर थी।

उषा को आज जो इतने बरस बाद संध्या ने देखा तो, देखती रह गई। कालिज की चंचल उषा वह नहीं थी, उस चपल बाला की जगह—उच्च कुल में जन्मी एक ऐसी सुसंस्कृत नवयौवना ने ले ली थी, जिसके अधरों पर मिठास और आँखों में हल्की प्यास थी।

प्रभाकर को दफ्तर की जल्दी थी, सो नहा-धोकर वह चला गया और उषा ज्यों ही स्नानगृह से बाहर आई, दोनों सहेलियों की बातों का सूत्र जहाँ से टूटा था, फिर से जुड़ गया और विषय का एक महीन और महीन धागा निकलता गया। उषा दर्पण में मुंह देखकर बिंदी लगाने जा रही थी कि संध्या ने पूछा—'क्यों री, सच बता, मन तेरा कहीं बँधा ?'

"ऊं हूं......" कहते तो उषा कह गई, पर संध्या ने जान लिया कि यह कुछ छिपा रही है। और व्यक्ति जब बात छिपाए तो साथी के लिए, यही ठीक है कि वह चुप रह जाए। सो, संध्या चुप रह गई। इस बीच उसका नन्हा रोने लगा और वह उसे बहलाने-सहलाने में लग गई और यों आधी दोपहरी सर पर होकर निकल गई और सूरज पूरब के ढाल से पश्चिम की तरफ ढलवां मैदान में लुढ़कते गेंद की तरह फिसलता रहा। उषा लम्बे प्रवास से थक गई थी, वहीं बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठी वह ऊंघ गई, सो गई। लेकिन, संध्या बिना काम रहने वाली नहीं। उसने ऊपर-नीचे के कमरे साफ़ किए, खिड़कियाँ और पर्दे खोल दिए और फूलदानियों में ताज़ा फूल सजा दिए। कल की, कालिज की लड़की आज गृहिणी बन गई थी और पत्नी की उसकी मर्यादा और माँ का उसका दायित्व उसे निरन्तर व्यस्त, तल्लीन रख रहा था।

काम से निवृत्त होकर संध्या उषा के समीप पड़ी चारपाई पर बैठ गई और उस पर अधलेटी, नन्हे के झूले की डोर हिलाती रही। पिछले दिनों प्रभाकर के दूर रहने से उसे नींद न आई थी और लम्बे रतजगे ने उसे थका दिया था और भोर में रोज़ ठण्डे पानी से नहाने के कारण उसे हल्की सर्दी और खांसी हो गई थी, सो, इस बार जो खांसी का एक ठसका उठा तो, उसने अपने मुंह पर हाथ रख लिया कि मुन्ना जग न जाय और उषा की नींद उचट न जाय—उषा जो गहरी झपकी में इतनी सुन्दर और सुरीली लग रही थी! सहेली की सहेली पर, दीदी की छोटी बहन पर जो स्वाभाविक ममता होती है वही संध्या के मन में उषा के प्रति थी। और यों जब से वह माँ बन गई है, दुनिया की सभी छोटी, नन्हीं और अबल चीज़ों के लिए उसका ममत्व और दुलार बढ़ गया है।

संध्या ने 'पिक्चर पोस्ट' से नज़र हटाकर उषा की ओर देखा, यह जानने के लिए कि यदि उसके जगने का कुछ आभास मिले तो, वह उसके लिए चाय बना दे। लेकिन देखा कि उषा बड़े मजे में सोई है

और उसका एक हाथ चेयर के बाहर लटक रहा है और एक, गोदी में साड़ी के छोर से उलझा है। श्रम और उष्मा के कारण उसके ललाट और नाक पर कुछ जल-बिन्दु झलक आए हैं। और एक ओर आँख का काजल फैल गया है और बेंदी की अरुणिमा पिघल चली है और तपन से कपोलों पर लालिमा उभर आई है। संध्या के मन में अवस्थित दीदी और माँ की स्नेहिल ममता जागी और, उसके जी में आया कि उषा को—जो इस बेढंगी कुर्सी पर, असुविधा में लेटी है, उठाकर, अपनी गोद में ले ले और उसे चैन से सुलाए। और यदि वह जग जाए तो उसे हुलराए-दुलराए और लोरियां गाकर नींद को बुलाए और अपना आँचल देकर उसकी भूख और अतृप्ति को दूर करे! धीरे-धीरे संध्या, विचारों के स्वप्नलोक में बढ़ती गई और स्वयं एक उनिद्र दशा में पहुँच गई, जहाँ विगत स्मृतियाँ बारी-बारी से उसके सामने आती, जाती रहीं। बचपन के दिन याद आए—'बात-बात में उषा का रूठना!' संध्या के होठों पर एक मुस्कान फैली—ओह! किस प्रकार, रो-धो, लड़-झगड़कर कहीं से यह आती और मेरे फ्राक से अपना मुंह पोंछ लेती......स्कूल जब गई तो दसवीं तक सब काम मुझे करना पड़ा......इस बीच संध्या देसाई का परिचय हुआ प्रभाकर मोरे से। संध्या की, जैसी 'रिज़र्व' रहने की आदत थी, वह अचल रही, पर, प्रभाकर ने अपना हठ न छोड़ा और दिन आया कि संध्या प्रभाकर की पत्रकारिता की प्रसिद्धि से प्रभावित हुई और एक सांझ जब जुही के नारिकेल-कुंजों के परदे के पीछे रात की नटी—रंगमंच पर आने से पहले अपना सिंगार कर रही थी, संध्या प्रभाकर की हो गई!

कुछ दिनों बाद प्रभाकर ने संध्या पर ज़ोर दिया कि वह फिर कालिज जाय।

"लोग क्या कहेंगे?"—संध्या बोली।

"लोगों की चिन्ता मुझे होती तो एक गुजराती लड़की को अपने घर की शोभा न बनाता। उषा भी तो कालिज में है। तुम्हारा मन लग जाएगा। यों भी यहाँ बैठी क्या करोगी?"

संध्या ने प्रभाकर की बात मान ली। यह उसके जीवन-साथी का, पति के रूप में पहला आदेश था।

फिर से संध्या में तरुणी का अल्हड़पन जागा और वह पुस्तकें हाथ में लिये पूना के कालिज में, उषा का साथ देने लगी। अब उषा और निकट आ गई। शाम को प्रभाकर के साथ वे दोनों बैठतीं और ज़माने भर के विषयों पर चर्चा छिड़ती। अकारण और मुफ्त में तीनों झगड़ते और संध्या को राजनीतिक विषयों पर प्रभाकर को चिढ़ाने में मज़ा आता। प्रभाकर 'देश की एकता और सामाजिक संगठन को प्रथम आवश्यकता' मानता था और संध्या के अनुसार 'शिक्षा महत्वपूर्ण' थी।

यों जब दिन बीते, तो एक दिन प्रभाकर की बदली पूना से दिल्ली हो गई और संध्या-उषा–दोनों सहेलियों के बीच मीलों की दूरी मंज़िल बनकर खड़ी हो गई।

पलने में मुन्ने ने अँगड़ाई ली और आँखें खोल दीं। संध्या जब उस पर झुकी तो वह मुस्करा दिया। संध्या ने होठों पर उंगली रखकर उसे चुप रहने का संकेत किया—'मौसी जग जाएगी।'

मुन्ना को गोद में लिए वह फिर अपनी जगह आ बैठी और उषा के जगने की राह देखती, उसे दूध पिलाने लगी। संध्या ने देखा—उषा के चेहरे पर, नींद में भी हँसी की लहर फैल रही है, जो बढ़ती जा रही है और उस लहर में एक अजब माधुर्य और सरलता है—ऐसी हँसी विवाहिता वधुओं के होठों पर झलकती है और यह मिठास केवल रसवन्ती रमणियों के चेहरे पर प्रतिबिंबित होता है। उषा ने ऐसा कौन-सा सपना देखा है?

लेकिन, संध्या अनजान न थी कि उषा पहले-सी निरीह बालिका नहीं रही है। वह भी युवती है और नए ज़माने की नयी लड़की है, जो प्रतिदिन और प्रतिपल बनती-बदलती है। उसे नहीं मालूम कि जब उषा मुस्कराती है तो, उसकी मुस्कान में हृदयतत्व कम और व्यावहारिकता ज्यादा रहती है। उसे शिष्टाचार और मेनर्स का अधिक मोह है, बनिस्बत, दो सहेलियों के आलिंगनबद्ध मिलन के। उषा जिस समाज और

सोसाइटी में पली है, वह प्रदर्शन और दिखावे को देखती है और व्यक्ति को सफलता उसके चरित्र और त्याग के लोक-संग्रह पर नहीं, बल्कि उसके बैंक बैलेंस पर आंकती है । यहां पैसा ही वह केन्द्र बिन्दु है, जिसके द्वारा सभी सम्बन्ध, स्वागत-सत्कार और समारोह संचरित होते हैं !

इधर उषा ने कुछ दिनों के व्यवहार से यह जान लिया था कि प्रभाकर उसकी ओर आकर्षित हो रहा है और इस प्रयत्न में रहता है कि दोनों अधिक से अधिक परस्पर मिलते रहें और संध्या अनजान रहे। उषा के मन में प्रभाकर के लिए स्वाभाविक प्रलोभन था। परन्तु जब से राकेश से उसका परिचय बढ़ा, यह प्रलोभन दो धाराओं में बंट गया और उषा इन दोनों धाराओं में अपनी नाव खेने की कोशिश करने लगी। आखिर राकेश के धन-वैभव की जीत हुई और एक दिन उषा-परखुरे लोक-समाज, कुल-परिवार और संध्या-प्रभाकर से छिपकर राकेश की हो गई। पूना शहर से दूर, किड़की में राकेश ने एक बंगला ले लिया और वहीं उषा दिन ढलने पर, जाने-आने लगी। संध्या का भोलापन उषा में यह परिवर्तन भले पहचान न पाया हो, पर प्रभाकर समझ गया कि उषा में बहुत-कुछ बदला है। जिस प्रकार हाथ से फिसलती मछली को हम पकड़ नहीं पाते, उसी प्रकार उषा प्रभाकर के आकर्षण के बंधन से निकल गई और प्रभाकर के मन में एक बारगी यह पश्चात्ताप आया कि व्यर्थ ही संध्या से छल किया……। लेकिन प्रभाकर उषा को भूला नहीं और राकेश जब इंजीनियरिंग की उच्च डिग्री के लिए बोस्टन गया, तो उषा को अपना एकाकीपन तरसाने लगा और प्रभाकर को पास आने का अवसर मिल गया !

इस गरम और सूनी दोपहरी में भी उषा को भली-भांति याद है, किस तरह वह अपने ड्राइंग रूम में बैठी प्रभाकर के साथ राकेश के भेजे पत्रों और चित्रों पर बहस किया करती थी। प्रभाकर के मन में परम्परागत नैतिकता का मूल्य अधिक नहीं था, परन्तु वह सदैव संयम और सदाचरण का हामी था। सो, उषा निश्चित, निर्द्वंद्व रही और, वह यह

सोच न पाई कि दूर होने पर भी प्रभाकर अनुदिन उसके निकटतर आता जा रहा है और इस निकटता के दौर में संध्या का क्या होगा?

सूरज-गेंद फिसलता रहा, मुन्ना रोता रहा और उषा की पलकें भारी होती रहीं। फिर पलकें लग गईं और उषा अचेतन मन के माया-लोक में भ्रमण करने लगी।

ड्राइंग रूम में बातचीत चल रही है······फॉरेन पोस्ट का डाकिया एक एअरमेल लैटर दे गया है, जिसमें न कुछ है, फिर भी उषा और प्रभाकर खिलखिलाकर हंस रहे हैं, और हंस रहे हैं······उषा की पलकें बंद थीं और कहीं अदृश्य में, मन पर यह आभास भी था कि संध्या की परछाईं पास बैठी हुई है·········।

संध्या ने देखा, उषा के चेहरे पर हंसी की लहर फैल रही है।

···हंसते हंसते प्रभाकर चुप हो गया है पर, उषा की हंसी नहीं रुकती है। प्रभाकर कुछ कहने को उतावला हो रहा है, पर उषा चुप रहे तब न वह कुछ कहे। कुछ कहना चाहता है, पर बोल जैसे होठों की देहली पर दुलहन की तरह आकर रुक गए हैं। और प्रभाकर देख रहा है कि उषा अब भी हंस-हंस कर लाल हुई जा रही है और उसकी यह लालिमा पहले होठों को रस से भिगो गई, फिर चिबुक पर उतरी और कपोलों से लेकर कनपटी तक फैल गई। इस खिलखिलाहट के वेग में उषा की देह लता की तरह लहरा रही है और उसके वक्षोज डाली के फूलों की तरह आन्दोलित हो रहे हैं। प्रभाकर आवेग को अपने में रोके उषा को देख रहा है!

संध्या ने मुन्ना के मुंह में दूसरा स्तन दिया और उसके पैर सहलाने लगी। सोचा, उषा उठ जाय तो चाय बना दूं। बड़ी देर से चाय पीने को उसका जी हो रहा है, क्योंकि वह रात में भी न सोई थी और अब दिन भर के काम के बाद भी ज्यों की त्यों बैठी है।

···प्रभाकर के मांगने पर उषा पाती देने से मुकर गई और उसने उसे अपनी 'बॉडो' में सुरक्षित रख लिया। किन्तु वह देख रही है, उसके

'ना' करने पर भी प्रभाकर झपटने की कोशिश कर रहा है और वह सोफे पर उकड़ूं होकर बच रही है। उसके कानों पर होकर प्रभाकर की गरम २ सांस उसके कपाल को छू रही है और उसके एक हाथ की उंगलियां उषा की उंगलियों में गुंथी हैं और दूसरे हाथ की उंगलियाँ छाती तक पहुंचना चाहती हैं। उषा के हृदय में ठंडी धुकधुकी चल रही है। उसने छटक कर भाग जाना चाहा, पर, वह अपने तनाव का वार चूक गई और प्रभाकर की गिरफ्त और गहरी हो गई। प्रभाकर की आंखों में अनादि रस भरा था, उसने होठ झुकाए, उषा ने आंखें बन्द कर लीं कि''' बाहर से नौकर ने दरवाजा खटखटाया।

मिलन में व्याघात पड़ा।

और सामीप्य में भी दूरी बनी रही।

दिवा स्वप्न में, दरवाजे की उस थपकी से उषा की आंखें खुल गईं।

संध्या ने मुस्कराकर उषा के जागने का स्वागत किया और नन्हा उसे देती हुई बोली—"इसे ले, मैं तेरे लिए चाय लाती हूँ।"

उषा ने पहली बार गौर से देखा कि मुन्ना ज्यों का त्यों प्रभाकर-जैसा है।

संध्या जब रसोई में चली गई तो, उसने मुन्ना को अपनी छाती से चिपटा लिया''' चिपटा लिया कि वह बिलख कर रो उठा।

रसोई से आवाज आई—"अभी आई बेटा—"

उषा ने रसोई घर की ओर तिरस्कारपूर्ण दृष्टि डाली और मुन्ने का गहरा चुम्बन लिया।

संध्या चाय की ट्रे ले आई। तभी प्रभाकर ने प्रवेश किया। संध्या देखकर, चौंककर बोली—

"आज इतनी जल्दी ?"

"हूँ"—प्रभाकर ने मेज पर हाथ का अखबार फेंकते हुए कहा—"उषा, ये गुजराती हमें बम्बई में न रहने देंगे। सैकड़ों वर्षों से जो लोग बम्बई में रहते आए है, बम्बई उनकी न होकर, दूसरों के हाथों चली

जायगी।"

"पर ऐसा क्यों ? बम्बई महाराष्ट्र की है, और रहेगी"—उषा ने जवाब दिया।

संध्या दोनों की ओर देखती, दोनों की बातें सुन रही थी। उसने प्रभाकर के हाथ में प्याली देते हुए कहा—"बम्बई में मराठे अधिक से अधिक दो-तीन सौ वर्षों से रहते हैं। उसके पहले, वे वहां नहीं थे। मतलब यह निकला कि बाहर से आए और इन दो सौ वर्षों में इतनी संख्या में उनका 'इम्पोर्ट' हुआ कि वे बम्बई में 'बहुसंख्यक' हो गये। महाराष्ट्र में बेकारी और गरीबी अधिक होने से ही तो, इस कदर लोग वहां से बम्बई आए..."

"मैं जानता हूं गुजरात में सब धन्नासेठ हैं।"

"यह तो मैंने नहीं कहा ! किसी प्रांत में गरीबी होना-अपमानजनक तो नहीं। यह तो आर्थिक सवाल है।"

"आर्थिक है, तभी तो हम अपने हाथ में सत्ता लेकर यह सवाल सुलझाना चाहते हैं"—उषा बोली-"बम्बई का मजदूर वर्ग महाराष्ट्रीय है और मालिक गुजराती।"

"अकेला गुजराती तो नहीं, और भी है"—संध्या ने उषा की बात काट दी।

"लेकिन, तुम्हें गुजरातियों से इतना मोह क्यों ?" उषा ने व्यंग्यपूर्वक कहा—"तुम्हारे पति मराठी, और पुत्र भी मराठी और पूना में रहकर तुम भी आधी मराठिन हो गई।"

"किन्तु मेरे माता-पिता तो गुजराती हैं ? खैर, हमारे सामाजिक या राजनीतिक प्रश्न व्यक्तियों के बीच की खाई न बनने चाहिए।" इतना कहते संध्या ने उषा को गौर से देखा। उषा के चेहरे पर एक कटुता भरी मुस्कान स्पष्ट दीख रही थी। संध्या ने ऐसी कटुता आज पहली बार देखी थी।

प्रभाकर एकदम खामोश बैठा था। उसकी मुद्रा से लगता था कि वह बड़ी गहराई में कुछ सोच रहा है। इसलिए संध्या ने उसे छेड़ना

और छेड़कर अधिक उद्वेलित करना, अनुचित समझा। वह ट्रे उठाकर चली गई और उषा-प्रभाकर 'संयुक्त-महाराष्ट्र' के विषय में मराठी नेताओं की सफलता-विफलता पर जोर-जोर से बहस करते रहे!

पास के कमरे में संध्या बिखरी चीजों को व्यवस्थित रखती हुई, सब सुनती रही। वह जानती थी कि बम्बई के प्रश्न ने मराठी जनता की भावनाओं पर चोट पहुंचाई है और यदि नेताओं के द्वारा थोड़ी सावधानी से काम लिया जाता तो, युगों से चली-आई गुजराती-मराठी जातियों की मैत्री में इस प्रकार दरारें न पड़तीं। परन्तु, हमारे कुछ लोगों को नेता-गिरी भी तो चाहिए। यदि कोई मसला, कोई इश्यू न हो तो, वे दिन भर बैठे क्या करेंगे?''' यही सब वह सोचती रही और उसके सधे हाथ स्वयंचालित यंत्रवत् अपना काम करते रहे। उसने उषा का ट्रंक झाड़-पोंछ कर कोने में रख दिया और उस पर पुराने अखबार का टुकड़ा बिछा दिया कि उस पर गर्द न जमे। फिर, छोटा अटैची केस उस पर रख दिया। वहीं, जो कुछ खाली जगह थी, उसमें वह उषा का एक छोटा-सा डिब्बा फंसा देना चाहती थी कि फिसलकर वह खुल गया और उसकी चीजें फर्श पर इधर-उधर फैल गईं। संध्या की नजर एक तस्वीर पर पड़ी और वह अवाक्, स्तब्ध रह गई। चित्र में उषा और प्रभाकर 'पति-पत्नी की तरह' बैठे थे!

बरामदे से उनके बोल अब भी आ रहे थे और तस्वीर लिये संध्या जो बाहर आई, तो, वहीं देहली पर ठिठक कर खड़ी रह गई—'ओह!' उसके मुंह से निकला। ऊषा और प्रभाकर छूटकर अलग हो गए।

चित्र संध्या के हाथ से गिर पड़ा और वह बिना कुछ कहे, एक कुर्सी पर बैठ गई। उसकी गोद में नन्हा था और वह उसका मुंह देखते हुए चुपचाप बिसूरती रही। उषा-प्रभाकर यों ही मौन, अवरुद्ध, अनि-रुद्ध बैठे रहे।

कोई कुछ न बोला।

संध्या ने प्रभाकर को बाहर से देखा था, भीतर से नहीं। प्रथम

मिलन पर, प्रेम में पड़ जाने वाले तरुण-तरुणी बाह्य दृष्टि से ही एक दूसरे को देखते हैं। हृदय की आंख प्रायः मुंदी रहती है और परिणाम में विवाहोत्तर विच्छेद और तलाक सामने आते हैं। इसलिए, आज भी मानव समाज में यह समस्या नहीं सुलझी कि जिससे विवाह हो उससे प्रेम किया जाय अथवा जिससे प्रेम हो, उससे विवाह किया जाय ? मूल में, प्रेम के सही या गलत होने पर वैवाहिक जीवन की सिद्धि या असिद्धि निहित है। कोरी भावुकता और ऊपरी तड़क-भड़क अनेक युवक-युवतियों के लिए भ्रामक और अहितकर सिद्ध हुई है। संध्या के साथ भी यही हुआ।

जुही के सागर तट का उसका वह प्रथम-समर्पण आज अन्तर का दाह बनने जा रहा है। उसके आंसू गिर रहे हैं, वह रो रही है और मुन्ना टुकुर-टुकुर उसके फड़कते होठों को देख रहा है और उषा-प्रभाकर शर्म में भीगे चुप बैठे हैं और बरामदे में रात की काली बदरिया उतर आई है।

प्रभाकर ने उठकर स्विच ऑन किया और संध्या की ओर बढ़ते हुए बोला—"मुझे कुछ कहना पड़ेगा ?"

संध्या ने जवाब न दिया। वह वैसी ही बैठी रही। उषा उसकी ओर ताक रही थी। प्रभाकर ने पुनः अपने प्रश्न के उत्तर के लिए जोर दिया—"बोलो !"

"मैं यहाँ से जा रही हूँ-" और उसने आँखें उठाईं। प्रभाकर ने देखा, उनमें कई समुद्र लहरा रहे हैं !

"ठीक है, एक गुजराती लड़की को मैं अपने घर में पत्नी बनाकर नहीं रख सकता, जब कि समूचा महाराष्ट्र गुजरातियों को यहूदियों की तरह निकाल देना चाहता है। महाराष्ट्र का बच्चा-बच्चा मिट जायगा, पर इन शोषक गुजरातियों को अपना खून..." बात काटते संध्या ऊंचे स्वर में बोली—"बस। बस भी करो।"

और वह उठ कर खड़ी हो गई। उसने बच्चे को पलने में सुला दिया। दो पल उसे एकटक देखा, फिर आगे बढ़ी, फिर उषा की ओर

एक घृणामयी दृष्टि डाली और द्वार की ओर बढ़ गई। देहली तक आकर वापस मुड़ी और अपने पति की ओर हाथ जोड़ दिए।

फिर एक झटके में वह मुड़ गई और अंधकार में ओझल होती उसकी पीठ ही नज़र आई।

× × × × ×

एक सप्ताह भी न बीता।

बम्बई में जुलूस निकले, गोलियाँ चलीं और लोग शहीद हुए। पत्रों में महाराष्ट्र के अधिकार के लिए शहीद होने वाली एक युवती का चित्र प्रभाकर ने देखा। वह प्रभाकर के उस नन्हें की माँ थी, जो अब बिना माँ का था।

उषा-प्रभाकर का जोश ज्वार की तरह उतर गया। और उन्हें संध्या के शब्द याद आए—"कोरी बातें करने वाले नेता और अनुयायी किसी निर्णय को सफलतापूर्वक नहीं पा सकते।"

संध्या की शहादत ने प्रभाकर के सिद्धांत एवं लक्ष्यहीन जीवन को नई दिशा दी और वह काम-धाम छोड़कर घर में बैठा रहने लगा। किसी-किसी दिन उसका मन न लगता था। कहीं जाने को जी न चाहता था। उषा अपने बनाव-सिंगार से उसे बहलाने की कोशिश करती थी, परन्तु उसका जादू पंगु हो गया था!

एक दिन यों ही जी बहलाने के लिए प्रभाकर पुराने सन्दूक़-पेटियाँ ठीक कर रहा था कि संध्या के बालापन का एक चित्र वहीं काग़ज़ों में से निकल आया। देखना न चाहने पर भी प्रभाकर ने उसे देखा तो, जाने क्यों मन को एक शीतल-शांति मिली। उसने उसे फूलों-वाली छोटी मेज़ पर रख दिया और इधर-उधर के—पारिवारिक काग़ज़-पत्र बटोरता रहा। तभी उसकी दृष्टि एक बन्द लिफ़ाफे पर पड़ी, जिस पर उसके पिता का पता लिखा था। उसे आश्चर्य हुआ कि यह पत्र आज तक खोला क्यों न गया? डाक की मुहर बतलाती थी कि यह, पिताजी के देहान्त के बाद पहुंचा है। पत्र प्रभाकर की माँ का था।

प्रभाकर ने उत्सुकतापूर्वक, जल्दी से उसे खोला और पढ़ा—"प्राणनाथ, मैं इस दुनिया से दूर जा रही हूं। आपने जो कुछ किया, उसके लिए मन में कोई शिकायत नहीं है। मेरी बस एक इच्छा है, इसे पूरी करना—हमारे बेटे प्रभाकर का स्वभाव बड़ा स्वाभिमानी है। मैं जानती हूं, उसमें भी अपने पिता का हठ समाया है!...खैर! उस पर यह प्रकट न करना कि उसकी मां समाज-द्वारा ठुकराई हुई, एक निरीह और निरपराध—गुजराती स्त्री थी!"

प्रभाकर के हाथ से पत्र और आंख से आंसू गिर पड़े।

• •

६ मैंने बच्चा नहीं चुराया ?

जमना ने धीरे से किवाड़ जुड़ा दिये और गली में आकर खड़ी हो गयी। ठंडी हवा के झोंके से उसकी इकहरी देह कांप उठी। उसने मलमल की महीन साड़ी इधर-उधर से खींच कर शीत से अपनी रक्षा का प्रयत्न किया। जब से वह बड़ी और जवान हुई है, उसका सारा समय अपनी रक्षा में ही बीता है। पार्टिशन के वक्त पंजाब से भाग कर लुकती-छिपती दिल्ली तक आई और दिल्ली में भी उसे जो सहारा मिला, वह नाम मात्र का सहारा था। कहने के लिए पति और घर था। लेकिन पति, दुनिया की नजरों में पति था। दूसरे पुरुषों की तरह उसे भी, चार हाथ वाले भगवान् ने नारी के तन और मन के संपूर्ण शोषण के लिए बनाया था। घर एकदम टूटा-फूटा और छप्पर रहित था। बरसात उसमें बरसती थी और धूप उसमें तपती थी और सर्दी का भी वह बसेरा था। इन सबसे; पति से, सर्दी-वर्षा और धूप से अकेली जमना लड़ती आई है; लेकिन लड़ते-लड़ते जैसे न हारकर भी वह हार गयी है, क्योंकि, वह अपने लिए अब नहीं जीती लोक-लाज और दुनिया की चिन्ता ने उसे, जैसे, कहीं से तोड़ दिया है। मन मर गया है और विश्वास और साहस का वह सहारा मानो बालू की नींव पर खड़ा टीला साबित हो गया है, जमना, जिसे चट्टान समझे बैठी थी।

साड़ी के खिंचाव से उसकी पीठ की सुघड़ सुन्दरता उभर आई थी और पूरे बदन पर साड़ी इस प्रकार छा गई थी, जैसे जल की पारदर्शक, पतली परत है और उसके नीचे-नीचे कमल की नाजुक कली तैर रही है। जमना ने गली में इधर-उधर देखा, कोई देख तो नहीं रहा है? जाने

क्यों उसे, किसी के देख लेने का भय, है। यह, किसी का अज्ञात भय, बरसों से उसके मन, प्राण पर छाया है। लाहौर में उसका रूप और यौवन, जब एक कहानी बन गया था, वह बहुत-बहुत डर गयी थी। लेकिन तब उसमें अनुपम सुन्दरता थी और भय की सारी काली दीवारों के बावजूद, एक साहसिन शक्ति थी, इस शक्ति के बल पर वह जैसे ज़माने से टक्कर लेने को आमादा रहती थी, किन्तु आज जमना सोचती है; 'आप ज़माने से तभी तक संघर्ष मोल ले सकते हैं, जब तक उसकी तथा-कथित परम्पराओं और नीतियों में न्याय सुरक्षित है।' समाज जब अपने ही न्याय के प्रति दगाबाज और बेईमान बन जाता है, तब आदमी का विश्वास खंडित और हताश हो जाता है। जमना का मन इसी निराशा की अंधियारी तहों में दबा पड़ा था, तब से अन्याय का कुहरा, उसने अपने आसपास घिरता देखा था और यह अच्छी तरह देख लिया था कि समाज---असमता और रूढ़िग्रस्त समाज के विरुद्ध अपनी लड़ाई में वह अकेली है और पति नाम का उसका साथी और संरक्षक भी उसके साथ मैदान में खड़ा रहने में असमर्थ है, आनाकानी कर रहा है अथवा मैदान में उसे अकेली छोड़कर पलायन कर गया है।

बरसों से उसकी नन्हीं-गोरी गोद कोरी कलशी की तरह सूनी थी। और कलशी भरने में 'मेघ इन्दर राजा' का जितना योग रहता है, उतना, जमना पति से को अपने नहीं मिला। 'वह तो'...लोग कहते हैं, जमना नहीं कहती, राम-राम, जमना अपने ही पति के बारे में, भला, ऐसी बात कैसे कह सकती है?

जमना की धारणा बढ़ी। एक छाया उसका पीछा कर रही है। उसने कदम बढ़ा दिये और साड़ी को भाल तक खींच लिया। जब वह दुल्हन बनी थी, उसका भाल इसी तरह ढंका था। और लाल रंग की रेशमी साड़ी की चमकदार परछाईं उसके चिकने गालों पर पड़ी थी। उसने तो नहीं देखा, लो भला, वह कैसे देखती! भले घर की कोई कुंवारी लड़की अपने कपोलों की लालिमा निरखती-परखती होगी कहीं? लेकिन, सहेलियों ने देखा था। हां, लालिमा तो नहीं देखी थी, पर इतना

जरूर सोचा था, जमना ने तब, उसके भी चंदा भाभी-सा नन्हा होगा और वह भी उसे गोदी में खिलाएगी और पलने में झुलायेगी और थपकी देकर सुलाएगी। लोरी गायेगी और डिठौना देकर उसे नजर से बचायेगी। 'नजर की बात सच है भैना, बचपन में उसके एक भाई था, मां जना, सगा भाई, चांद उसे देखे, तो कह दे इसे चांद बना दो मैं छुट्टी लेता हूँ, मगर भाग फूटे कि लोगों की नजर लग गयी और वह तनिक-सी सर्दी से मर गया!' मगर क्या वह सचमुच मर गया? इतना सुन्दर बालक कैसे मर सकता है? भगवान् क्या इतना निर्दयी है? पड़ोस का बदलू, बदले खां कसाई भी इतना दयालु है कि अपनी एक बकरी को कई सालों से इसलिए जिबह नहीं करता कि वह बड़ी मासूम और सलोनी है।...और दिन-बरसों का क्या, वे तो बुढ़िया की नींद की तरह उड़ते गये...उड़ते गये।...ब्याह के बाद बरसों बीत गये, लेकिन जमना 'मां' न बनी।

उसे लगा कि उसका पीछा करती पदचाप बहुत निकट आ गयी है। उसके जी में आया एक बार, वह भाग निकले, दौड़ने लगे, लेकिन उसकी अपनी सचाई ने इसे स्वीकार नहीं किया। रोष में आकर उसने पलट कर देखा—कोई न था, कोरी धारणा, कोरा भ्रम था! भ्रम के मरने पर, उसका आत्मविश्वास जी गया। उसकी चाल में तेजी आ गयी।

वह चल रही थी, परन्तु उसके सामने यह स्पष्ट न था कि वह कहां जा रही है? कोई दिशा, कोई देश, कोई गांव, कोई गैल? बस, जा रही है। गति थी; किन्तु गंतव्य नहीं था। आप अपने से अपरिचित थी। अपरिचित थी, इसलिए आप अपने से छिप रही थी। सो, लुकती-छिपती वह ठंडी दिशाओं के पार, आगे और आगे बढ़ती रही। कोई क्षितिज तो था नहीं कि अपनी सरलता से उसकी बंकिमा का स्वागत करती, उसे पाहुन बनाती। क्षितिज पराये थे, इसलिए रोक न सके। उन्होंने यह नहीं कहा कि 'आज यहीं रुक जाओ। कल मुँह-अँधेरे चली जाना!' एक बार, सिर्फ एक बार, जमना के जी में आया था कि वह रुक जाये। पराये क्षितिज पर इन्द्रधनुष की सतरंगी शोभा देखकर, उसका नारी मन विमोहित हो गया था कि शिशु के वरदान की याचना

करे, परन्तु आस-पास और ऊपर-नीचे के समाज के डरसे वह रुकी नहीं। मनुष्य और देवता के भय ने उसे चलती रहने, निरुद्देश्य बहती रहने को मजबूर कर दिया था !

उस पराये घर में, उसके आंगन में, बालगोपाल और शिशुओं की कैसी छबीली झांकी थी। जमना के मन ने बहुत-बहुत चाहा कि वह कुछ देकर कुछ ले ले। अपने लिए उतना नहीं, जितना पूर्वजों के पिंड-दान के लिए। लेकिन, मन की बात तन ने नहीं मानी। वह तो नटता रहा और यही कहता रहा : 'मेरी बोटी-बोटी अमानत है।'

सप्तपदी की सीमाओं में जीवन का दौर जकड़ा पड़ा है। यह भोली जमना को सिर्फ उसी दिन ज्ञात हुआ था।

उसी दिन ज्ञात हुआ था कि यह तो मात्र लोगों का भ्रम है कि साक़ी के पास पूरा मैख़ाना है, इसलिए उसकी प्याली हरदम लबरेज रहती होगी। लेकिन नहीं, सबसे ज्यादा प्यास साक़ी की है। उसे तो एक घूँट भी नसीब नहीं। प्रबल है उसकी तृषा, तभी न वह औरों की तृप्ति के लिए विकल है।

उसने देखा, वह अस्पताल के गेट पर खड़ी है। यही है वह जगह। हल्के अँधेरे और धुँधली चांदनी में अस्पताल की विशाल इमारत कैसी निरीह-सी खड़ी है, जैसे कुछ जानती नहीं। लेकिन सारा कसूर इसी का है। यहीं जमना का मन मुग्ध हुआ था और यहीं वह लुटी थी !

—बड़ा नटखट था वह। कितना चंचल, पर कितना मासूम ! उसकी तो आंखें देखकर ही जमना की, तन-मन की सुध बिसर गयी थी। युग-युग से मानो वह बिछुड़ा था और सहसा उस दिन मिल गया था।... जमना का मन ऐसे-ऐसे, यों, इस तरह उछलने लगा था और दौड़कर सूने कमरे में वह उसके पास पहुँची थी, उसके पलंग के पास....और अप-लक, निर्निमेष, एकटक उसे देखा था और देखती रही थी और चूम लिया था। जमना को डर था, चूमने पर वह रो देगा, पर नटखट वह तो मुसकरा दिया। और किलकारी भरकर, हाथ-पैर चलाने लगा। जमना ने उसे अपनी छाती में छिपा लिया।

जमना के हृदय ने, अपने ही मन के इस कथन पर गवाही नहीं दी कि अपने कन्हैया से यशोदा माता का भी इतना ही प्यार था। "जसोदा को गैयन के आगे फुर्सत कहां रही होगी। है न लल्ला। मैं तो अपने तारे को अपनी आंख में रखूँगी।"

कुछ नम, कुछ सूखी घास के पीले पठार पर, प्रकृति के वरदान की तरह पड़े दो पाषाण खंडों-जैसे जमना के उरोजों में मुँह छिपाए शिशु वह दुबका रह गया।

जमना ने देखा, इसी द्वार से वह बाहर आई थी, और इसी गेट से इधर मुड़ चली थी। तब उसकी चाल में बिजलियाँ थीं और गति में अजब एक थिरकन थी!

जाने अनजाने। जाने-जाने। मगर, उसका सिर तनता जा रहा था। वह सुबह उठकर, जरूर पनघट पर जायेगी और बाँझ का मुँह-न-देख-लेने के भय से मुँह छिपानेवालियों से साफ़-साफ़ कह देगी,—"मुँह झुलस दूँगी अगर...आँखें बचाईं तो। जरा, अपने कलूटे को देखो और फिर मेरे चन्दा को भी निरखो। उनका रोना और इसकी मुस्कान देखो।" और नंदा ननदी को तो वह पूरा पाठ पढ़ायेगी!

उस दिन अस्पताल से लौटते समय जमना की साड़ी बिखर चली थी। और ढीली चोटी में बँधे केश छूटकर फैल गये थे। मन के गेंदा-गुलाब को साकार पा लेने की मस्ती में वेणी से गिरे, बन के गुलाब की चिंता उसे न रही थी! श्रम की माया-छाया तिरोहित हो गई थी और मन का भार प्यार बनकर छलछला रहा था।

रास्ते भर वह सोचती आई थी, अब किसकी हिम्मत जो उसे 'बांझ' कहे। कौन होगा जो उसके अपने बेटे को देखकर दंग न रह जायेगा! पति-पति के प्रति पिछले दिनों, उसके मन में भयंकर चिढ़ चढ़ गई थी, लेकिन आज मुन्ना का मुंह देखकर जमना पति के सभी अपराध भूल गयी! उसके सारे खून माफ कर दिये। वरना, वह तो जमना को धमकियां दे रहा था कि यदि निपूती रही तो वह दूसरा ब्याह कर लेगा! धमकी, धमकी नहीं थी, मुआ बदरी बाम्हन बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस बरस

की झोंटियों के फोटो ला रहा था और कुमारियों के गुण अखबारों में छपकर आ रहे थे, सो पतिदेव तो ठहरे भोले शम्भु, पिघल गये—औरत की जात ही ऐसी ! जमना अपनी ही जाति को कोसने लगी—अपनी खुशी की खुमारी में उसने पति को माफ कर दिया।

अपने वेग में वह धीरू का मोहल्ला और डाकघर पारकर गयी थी। और ननदें, उनकी कुछ न पूछो। खुद संतानों के लिए भली से बुरी बनीं और जाने कौन-कौन से पीर की दरगाहों पर रातों भटकती फिरीं, तब कहीं गोदें भरीं, लेकिन उन्होंने तो बेचारी, बिना मां की इस जमना का जीना ही दूभर कर दिया था। अब अपना-सा मुंह लेकर वे रह जायेंगी। झूठमूठ ही सही, बलैयां लेंगी और ऊपरी मन से ही सही, दुलार दरसाएंगी। लेकिन, नहीं, जमना किसी का, ननद हो या देवरानी जिठानी हो या खुद की बहन, भाभी – किसी का भरोसा नहीं करेगी। कौन जाने मुन्ना-लल्ला के भाल के केश काट कर, वे अपने पास रखलें और चौदस का चांद चढ़ने के पहले, अपने दूध में भिगो कर जला दें... हाय...हाय। जमना ऐसी भोली-सीधी नहीं ! देवरानियां यू.पी. की हैं तो क्या हुआ, वह भी पंजाबन है। ठाकुर की बेटी है। क्या हुआ, जो आज घर-बार और खेत-खलिहान लुट गये। एक दिन उसके दरवाजे बड़े बैल झूमते थे और चौबीस घंटे चिलम चलती थी और चौकीदार रांझा गाया करता था। नैहर की स्मृति पर, जमना के रतनारे नेत्र भर आये, पर वह उन्हें पोंछ न सकी, क्योंकि दोनों हाथ छाती पर दबाये थी।

साइकिलवाला ग्वाला उसके बिल्कुल क़रीब होकर सर्र से निकल गया। जमना का तो जी धड़कने लगा। हाय, उसके लल्ला को कुछ हो जाता तो।...नहीं, वह उसे भैंस का दूध कभी नहीं पिलाएगी। उनसे कहेगी : "कुछ भी हो गाय बांध लो। न सही, मेरे कंगन बेच दो। सौ-डेढ़-सौ में असली काठियावाड़ी नस्ल की गैया मिल जाएगी और...फिर तो जमना अपने मोहन को खूब मक्खन खिलाएगी और दूध पिलाएगी और घी से यह कुल्ले करेगा।..." जमना का मन गद्गद्

हो गया। आंखें अपार भरी थीं। हृदय द्रवित होकर झर्झर् बरस रहा था।...मक्खन खिलाएगी क्या? खिलाने से पहले ही वहां तो रसोईघर में हँडिया सफा-चट मिलेगी। पूछेगी—"लल्ला, मक्खन कहाँ गया?" "बिलाई का गई! अम्मा! मैंने नहीं काया! मैं क्या जानूँ?" तब वह गाएगी—'मैया, मोरी मैं नहीं माखन खायो' और पुलक में भरकर, वह उसे उछालकर उठा लेगी और अपनी इन्हीं छातियों में इसी तरह छिपा लेगी! जमना के मन में खेद था, उसकी छातियाँ, बड़ी बहुत नहीं हैं कि वह शिशु को खूब-खूब दूध पिलाए और इतना ही नहीं, पड़ोसिन चाची की मुन्नी को भी अपना दूध पिलाए और फिर भी बच जाए तो जिठानी के अठमासा मुन्ने को पिला दे। ताकि, वह भी देखे कि तुम्हारे मन में डाह हो तो भले हो, जमना तो जमना मैया की तरह सरल और निर्मल है।

दोनों ओर सड़क पर अंधेरा था। छायादार पेड़ आकृतियां रचते हुए परस्पर क्रीड़ा कर रहे थे। पास ही कीर्तिधर कालेज था।... एक दिन मेरा मनमोहन यहाँ पढ़ने आएगा। 'ज़रूर आएगा' जैसे वातावरण ने दुहराया। कालेज का अहाता पार कर, आगे बढ़ी तो खयाल आया कि विलायत से डाक्टरी पढ़कर मुन्ना जब लौटेगा तो पड़ोसिन चाची की मुन्नी से उसका ब्याह कर देगी जमना! हां भई, अनजान लोगों में कहाँ लड़की ढूंढने वह जाए? ज़माने का भरोसा नहीं। जाने-कैसी लड़की निकल जाए, उसके, उसकी मां के, दादी—पर दादी के धरम-करम और संस्कार किसे मालूम कैसे रहे हों? ना बाबा, जमना इतनी बेशरम नहीं! और तब तो वह बूढ़ी हो जाएगी। सो हिरफिर नहीं सकेगी। आँखों से दिखेगा भी नहीं। दीखने की खूब फिकिर की तूने जमना! जब तेरा बेटा ही विलायत से डाक्टरी पास करके आ जाएगा, कहेगा, "मां, मैं तेरे लिए बढ़िया चश्मा बनाता हूँ। ये ले।" और बुढ़िया जमना अपने पोपले मुंह से मुस्कराएगी और मुन्ना साहब बड़ी अकड़ में कहेगा—"गंगाराम, दूसरे मरीज़ को भीतर लाओ।" मुझे तो बेटा कैसे कहेगा..."मां बाहर चली जाओ।" लेकिन डाक्टर की मां

मूरख थोड़े ही है कि वहीं बैठी रहे ! वह तो इधर चश्मा लिया नहीं कि उधर बाहर। सीधी सत्यनारायण के मंदिर में जाकर चतुर्भुज के दर्शन करेगी और कथा कराएगी !

फिर मेरे बेटे की शादी होगी और बहू आएगी। मैं कहूंगी—"उषा बेटी, चाय बना दे, मेरी तो पसली में दर्द है।" और वह दौड़कर आएगी और पसली पर मलहम लगाकर, सेंक कर देगी और गरम चाय की प्याली पिलाएगी''फिर गरम शाल ओढ़ाकर मुझे सुला देगी। फिर, जब मेरी चन्द्रमुखी सीमन्तनी होगी, तो मैं दसवें महीने के दिन गिनती रहूंगी और पोते को अपनी गोद में खिलाकर मरूँगी ! मेरा बेटा हरिद्वार में मेरी अस्थियों का विसर्जन करेगा और गयाजी में पिंडदान !...'कितने बड़े भाग्य वाली थी जमना।' पड़ोसिनें और पड़ोसी कहेंगे—'देखा, सतवंती थी, मरी भी बड़ी एकादशी के दिन !' तब, मेरे बेटे को कितनी कठिनाई होगी !....

जमना ने बच्चे को छाती में दबा लिया। और भूत-प्रेत से, कानून से, चोरों से, सर्दी से अपने शिशु की रक्षा के लिए मनौतियां लेती हुई, आगे बढ़ती रही !...

लोकदृष्टि की डीठ से बचती जमना देहली में पग धरने जा रही थी कि चम्पाकली की माँ ने पूछा—"क्या ले आई, जमना भैन ?"

जमना ने जैसे नहीं सुना !

लेकिन सूरजमुखी पीछा छोड़ने वाली नहीं थी। सो भीतर जाते-जाते कह दिया, "कुछ नहीं, अरहर की दाल लाई हूं।"

ठाकुरजी के आले के पास, उसने एक पालना बरसों से सजा कर रखा था। शिशु को उसमें लिटाकर, पीछे मुड़ी थी कि देखा—मुंह बाए सेवंती खड़ी है। जमना ने तुरन्त बारह आने पैसे देकर उसका मुंह बंद कर दिया। कमीनों को देते रहो, तो खुश रहेंगे।

फिर जाकर बिस्तर पर पड़ रही थी और अचानक जोर से 'हाय...हूं...मर गई री, मेरी मां !...हाय...उई....' पुकार कर और मुन्ना को चिकौटी काटकर, रुलाकर, पड़ोसिनों में घोषणा कर दी थी,

कि तुम्हारे ही नहीं, जमना के भी बच्चा हो सकता है। वह हरगिज निपूती नहीं है। और जब तक पड़ोसिनें इधर से उधर दौड़ीं, नारायनी नाइन आई। शिशु तो जमना के पास टुकुर-टुकुर लेटा था!

मोहल्ले भर में खबर फैल गई—"जमना के बालगोपाल हुआ है।"

"जमना के घर कृष्ण-कन्हैया ने जनम लिया है।"

सेवंती सारे ज़माने को खबर दे आई—"भगवान ने जमनादेवी की गोद भर दी।" और नारायनी भी अपना इनाम—प्रसूति की साड़ी, ब्लाउज़ और एक नई अतिरिक्त साड़ी, पाकर लौट गई।

पड़ोसिनों ने गीत गाए। मुंह मीठा किया। और भारी घाघरों में घहराती, मस्त चाल में वे चली गईं!

शाम को, जब 'वे' आए तो, चकित रह गये! फूले नहीं समा रहे थे। करीब आकर इतना ही बोले— "वाह, तुमने तो हमसे भी छिपाकर रखा!......कहाँ है हमारा राजा बेटा?"

जमना नट गई—"ऊं हूं......"

"अरे भई दो न हमें।"

"नज़र लग जाएगी।"

"वाह! हमें अपनी ही नज़र कैसे लग सकती है?"

—सुनकर जमना खुश हुई, आज जीवन में पहली बार ये एक डायलॉग तो बोले! कहा—"पहले इनाम लाओ।"

बेचारे ने अपनी ढीली जेब से एक सौ का नोट निकालकर नीचे रख दिया। जमना ने अपनी तंग चोली में धर लिया—"अपने राजा बेटा के लिए करधनी बनाऊंगी।"

इस तरह, हंसी-खुशी में दो दिन बीत गये।

तीसरे दिन बड़ी भोर, जमना प्रसूतिघर में अंगीठी के पास बैठी, मुन्ना को अपना आंचल देने की कोशिश कर रही थी......दूध नहीं उतर रहा था।......उसका जी जाने कैसा हो रहा था—"हे प्रभो, क्या मैं दो घूंट दूध भी अपने मोहन को— अपने चंदा को नहीं पिला

सकूंगी ?"....अपना सर्वस्व देकर भी, काश वह अपने स्तनों में दो बूंद दूध पा जाए ! लेकिन सदा की तरह इस बार भी भगवान के नाम गुन-गुनाई, जमना की विनती खाली-रीती ही लौट आई ? उसकी आंखों से आंसू झरने लगे और झर-झरकर वे मुन्ना के मुंह पर, होठों पर गिरने लगे !...

उस दिन की बात है—उसका पति उतावले पग धरता आया। उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था, यह चेहरा नहीं है, मिट्टी में सना हुआ मटमैला, सफेद साबुन है !

बोला—"वो....वो...."

जमना ने ध्यान न दिया। ये तो आजीवन 'वो...वो...ओ-ओ' करते रहेंगे। बड़ी कामनाओं के बाद आज जब जमना को अवसर मिला है कि जीवन के एकान्त कोने में बैठकर, अपनी लाल-रेशमी साड़ी के आंचल में, आंचल के दीप की तरह सहेज कर अपने मुन्ना को अपना अमृत पिलाए, ये आए हैं, माधवी-लोरी का दुलार लेकर आने के बजाय, "वो...वो...ओ...ओ..." का संदेश लेकर !

जमना ने जैसे सुना नहीं। वैसे भी, उसके माथे पर कनपटी तक रूमाल बंधा है, उसने देखा है कि जच्चाएं अक्सर इसी तरह अपने सिर पर रूमाल बांधती हैं !

रूमाल की सीमाओं से उभर कर, उसकी चिकनी, कृष्ण अलकें भाल पर और पीछे ग्रीवा से पीठ तक झुक आई हैं। काजल की कटो-रियों-सी उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में कज्जल फैल गया है ! तन-मन की निखिल एकाग्रता और नितांत चेतना को, सहेज-सहेज कर, वह दूध की पतली-महीन धार बना देना चाहती है ! मुन्ना की एक सांस के लिए, अपनी समस्त सांसें दे देने को तन्मय है ! उसके एक-एक रोम को रक्षित रखने के लिए, जमना अपना जीवन और अपने जन्मान्तर देने को तत्पर है !

जमना में रूप है, सौन्दर्य है, छवि और आकर्षण है। लेकिन रस और धारा नहीं है। धारा नहीं है तो उद्‌गम-स्रोत, समर्पण और विलयन का क्या मोल ?

और जमना जानती है कि रस ही जीवन है। यदि रस नहीं होगा, तो वह अपने शिशु का, अपने मुन्ना का लालन-पालन कैसे कर सकेगी ? उसका यौवन अनपूजा रह जायेगा। आरती के बिना मातृत्व मुरझा जायेगा !

ज्यों-ज्यों रस के अभाव का भान बढ़ता गया, जमना का एक-एक रोम बारी-बारी से बिलखता गया ! अंग-अंग में विचित्र एक वह्नि सुलग उठी। और रस की पिपासा व्यग्र हो उठी।

सहसा छाती में एक वेग, एक उभार, एक प्रवाह, एक प्रचंड दावानल-सा कुछ उठा। मधुर पीड़ा के सम्मोहन में जमना का वर्तमान विस्मृत हो गया। शिलाओं में जैसे ज्वार फूटे और एक अकथनीय मादक उन्माद की बेचैनी और प्रशांति में, जमना ने आंखें मींच लीं। शिरा-शिरा फड़क उठी ! फड़क कर सो गई।

बालक चुबुक-चुबुक कर दूध पी रहा था।

लेकिन, ओ...ओ...वो...वो....के व्यापारी ने व्याघात पहुँचाया—

"पुलिस...पुलिस आई है" ! कहकर वज्र गिराया।.......

कमरबंद दैत्यों के साथ कँटे-छँटे केशवाली, गोल साड़ी पहने, काली-सांवली, पावडर और लिपस्टिकवाली नागिन, मानो नाचनेवाली है, ऐसी मिडिल स्कूल की मास्टरनीनुमा एक औरत थी। उसने तो जैसे जीवन में कभी बच्चा न देखा हो, इस तरह मुन्ना से चिपट गई। और मेरा फूल, मेरा गेंदा-गुलाब, मेरा नीलकमल उस नटी को देखकर जोर से रोने लगा !

"यही है" नटी, मास्टरनी, नाचनेवाली बोली ! और चलने को उद्यत हुई···और 'ये' राजाबेटा के रखवाले थर-थर कांपते देखते रह गए !

पड़ोसिनों ने भी कुछ न कहा। कल तक उन्हें जो चायें पिलाईं, मिठाइयां खिलाईं और उनकी नवविवाहिताओं की साड़ियों पर गोटा-किनारी लगाई और उनके पापड़ बेले सो, सब अकारथ गये। सबके होठों पर जाले जम गये और चेहरे इस तरह लटक गये, मानो दिल से मुंह तक किरोसिन फूट निकला है !

पांच भले-बुरे आदमियों के बीच अकेली जमना, औरत की बात, आखिर क्या कहती, क्या करती ? फिर भी उसने हिम्मत बटोर-कर नटी और उसके हवलदार का हाथ पकड़ लिया—

"तुम्हारे पांव पड़ती हूँ। उसे न ले जाओ।...हाय...मेरे मुन्ना को सर्दी लग जायेगी।...बाहर उसे नजर लग जायेगी।"

वह रोती रही।

हवलदार, जमादार, फौजदार के साथ एक डाक्टरनी भी थी। वह प्रसूति के कमरे में आई और किवाड़ जुड़ाकर, मुस्कराकर जमना को धीरज बंधाने लगी। उसे बातों में उलझाकर, शरीर की जांच करने लगी। फिर नाई-जैसी अपनी पेटी और औजार समेटकर, बिना-बोले बाहर निकल गयी और हवलदार से कहने लगी—

"प्रसूति नहीं हुई। जमनादेवी जच्चा नहीं हैं।"

"अरी डायन, अरी चुड़ैल ! जमना जच्चा नही है तो, तू ही बता, यह बच्चा—यह मन-मोहन, कहां से आया ?"

जमना ने चिल्लाकर यह कहना चाहा, पर भरी भीड़ में, पांच बड़ों के सामने शरम से मुंह न खुला। घूंघट उलटकर चेहरे की प्यास और दिल का दर्द न दिखा सकी !

"मेरे चेहरे-जैसा चेहरा ! मेरी आंखें-जैसी आंखें ! मेरे बालों जैसे बाल ! मेरी नाक जैसी नाक ! कान, होठ, चिबुक और नक्श और फिर चंदा मेरी नहीं तो किसका ?"

जमना धूल में, पैर के अंगूठे से, एक छोटे-नन्हे चेहरे की रेखाकृति बनाती हुई सोच रही है—"अच्छी चीज को देखकर लाख-जन दावा पेश करते हैं।"

चुनौती फेंककर जमना ज़ोर से चिल्लाई—

"जच्चा नहीं है !....मैं मां नहीं हूं ?....डायन, यह देख...इन थनों में ये दूध कहां से आया ?"....और जमना ने एक झटके में अपने ब्लाउज़ के दोनों पट खींचकर, खोल दिये ! बटन टूट गये और मुंह भीगे स्तन बाहर आ गये। तभी, जमना को दूधमुंहे की याद आयी और उसके प्राण सिहर उठे ! फिर बुझती लौ-सी काया कांपी और बर्फ-सी जमकर, वह, वहीं खामोश खड़ी रही—खड़ी रही !

गेट यह उस दिन खुला था, आज बंद है !

अच्छा है कि बंद है, वरना नटी-जैसी निपूती, फैशनवालियां जमना जैसी जनेताओं के शिशु को न उठा ले जाएं !... फिर बिलख-बिलख कर वह बोली—

"ऐ अस्पतालवाले, ऐ जमादार, चौकीदार महाराज ! ....जरा मुझे अपने मुन्ने का मुंह देख लेने दो, मैं चली जाऊंगी। मैं उसे दूध पिलाकर लौट जाऊंगी।......रातों जागकर मैंने उसकी राह देखी है.... मेरी छातियां दूध से भर गयी हैं, उनमें दर्द हो रहा है।...

"अच्छा यहां बैठती हूं, उसके पापा उसे लेकर आने ही वाले होंगे। मुन्ना के बालिस्टर चाचा साथ में गये हैं। ....अभी-अभी, उसे लेकर लौटेंगे। कहते थे—देखना भाभी, हवलदार के हथकड़ी न पड़ी ...ऐ जमादार, क्या मैं अपने ही देवर की बात न मानूं ?"

चौकीदार उसे कुछ कहता नहीं। अस्पताल में उसे, भीतर आने भी नहीं देता और बच्चा लेकर जाने भी नहीं देता ! स्वागत न करे, दुत्कारता भी नहीं !

प्रसूतिगृह जैसी जगहों की दुत्कार भी जमना को मीठी और सुहावनी लगती है। वह, जमना के मन इस बात का सबूत है कि जमना मसान-जैसे सूने घर की निपूती रखवालिन नहीं, बालकृष्ण के मन्दिर की पुजारिन है !

ठंडी हवा के झोंको से जमना की इकहरी देह कांप रही है। मलमल की महीन साड़ी इधर-उधर से खींचकर अपनी रक्षा का प्रयत्न,

वह भूल गयी है ! जमना सर्दी में ठिठुर रही है ! परन्तु, वह ठिठुर रही है, यह भान, वह बिसरा बैठी है !

कोर्ट के कमरे में बहुत भीड़ थी !

पुरुष तो पुरुष, स्त्रियां भी थीं...

--जैसे जमना एक तमाशा है ! एक अजूबा है, जो कटघरे में खड़ा है !

जमना को विस्मय था : इतनी-इतनी औरतें जो बच्चों को प्यार करती हैं, उन्हें पुलिस नहीं पकड़ती और अदालत अपने इज्लास में नहीं बुलाती ।

एक अकेली जमना ही है, जिससे हरेक को बैर है-- देश, वतन, भाग्य, भगवान, पति, परिवार, घर, बार, जुग और जमाना, सब रूठे, सब छूटे ! सबने उससे लिया, निरन्तर लिया, पर दिया कुछ नहीं ! यों, जमना अकेली रह गयी ! वतन पंजाब से भाग कर दिल्ली आई और दिल्ली में घर और मन्दिर, मन्दिर और मजार, मज़ार और अस्पताल के प्रसूतिगृहों तक लुकती-छिपती, ज़ियारत करती रही, यात्रा करती रही--लेकिन, उसकी सारी कामनाएं चूर हुईं । विनतियां विफल हुईं । दुआएं नामंजूर हुईं । व्रत व्यर्थ गये और उपवास भ्रष्ट हुए। भगवान ने लाखों-करोड़ों शिशुओं में से एक शिशु जमना को नहीं दिया ! दुनिया भगवान के बच्चों को मसान में सुला देती है, लेकिन भोला भगवान तो फिर भी सब को सदैव संतति-शिशु देता रहता है ! उसने माटी में हरी घास खिलाई है और मां की छाती में दूध के दीप सँजोए हैं ! लेकिन, ऐसे उस भगवान ने भी जमना को एक शिशु न दिया ।

भगवान ने दिया जमनी, मगर इन्सान ने छीन लिया ! आदमी और उसके क़ानून ने छीन लिया ! खूनी संगीनों ने दूधिया-आँचल पर पहरा बिठा दिया ! कहा, यह तेरा नहीं है ! बच्चा क्या-किसी एक माँ-बाप का होता है ? वह तो हरेक माँ का मुन्ना है और हरेक बाप का दुलारा है ! हरेक औरत हरेक बच्चे की माँ है और हरेक बच्चा हरेक

औरत का नयनतारा है ! लेकिन पुलिस के दिल होता है ? पुलिस के दिल होता और दिल में रहम होता और रहम में रक्षा होती, तो पार्टिशन क्यों होता ? आग क्यों लगती ? लूट क्यों मचती ? इज़्ज़त क्यों जाती ? आबरू क्यों मिटती ? धर्म क्यों भ्रष्ट होता ?......

बच्चे की ललक उसे घर से मठ...मठ से मज़ार और मज़ार से अदालत तक ले आयी !

अदालत में इतनी भीड़......! जमना हैरान है—पुरुष तो पुरुष... स्त्रियाँ—दो चोटियों वालियाँ ! दफ्तर और स्कूल में काम करने वाली निपूती स्त्रियाँ...इन्हें भला क्या देखना है ? यंत्र और तंत्र से बाँझ बनी रहने को मुस्तैद ये क्यों जमना का तमाशा देखने आई हैं ?... ये तो बच्चे नहीं चाहतीं ? फिर बच्चे के मामले से इन्हें क्या लेना-देना है ?...हाय, जब हरेक बच्चा दो हाथ लेकर आता है, ये 'मँहगाई' और 'बेकारी' की बात बनाकर विधाता माता की राह में बाधा क्यों बनती हैं ?

जमना ने उन्हें घूर कर देखा।

सफेद मलमल की मैली, महीन साड़ी में, पतली-लम्बी नाक वाली दुबली-पतली जमना क़ानून के कटघरे में अविचल खड़ी थी ! क़ानून की उसकी लड़ाई थी। क़ानून कहता था : प्यार मत करो। प्यार 'चोरी' भी कहला सकता है। लो, क़ानून उसे नई सिखावन देने आया ! कल तक जमना को उसकी माँ और दादी ने, दादी और भाभी ने जो उपदेश दिए थे, जो कथाएं सुनाई थीं, जो राहें बताई थीं उन सबको ग़लत बताकर क़ानून उसे नई गैल बताना चाहता है और फैशन वालियाँ उसे परिवार-आयोजन और कोख-नियोजन के मंतर सिखाना चाहती हैं, ताकि ऊँची एड़ी के जूते पहनकर किसी भी मरद के साथ दूसरा शो देख सकें। ना बाबा, जमना इतनी बेग़ैरत नहीं। आख़िर, वह किस घर की बेटी है ? 'जमना बेटी, इस घर में बहू की डोली आती है और अर्थी बाहर निकलती है,' उसकी मरती सास ने कहा था ! और शिक्षा के सुनहरे इस ताबीज को जमना ने अपने कलेजे से लगाकर रखा है, तभी न आज तक उसकी रक्षा हुई है ! उस दिन वह पराये क्षितिज की रंगी-

नियाँ देखकर अपनी सादगी तजने को उद्यत हुई थी, परन्तु उसका धरम-भ्रष्ट होते बच गया था, सो इसी सिखावन के बल पर !

"ऑर्डर...ऑर्डर...!"

"माई लार्ड...मुजरिम....अस्पताल....चौकीदार राधेश्याम का बयान....मुसम्मात....सेवंती...हा....हा...ही...ही...दो चोटियाँ सूरजमुखी जोजे श्यामलाल पंसेरी हाजिर है...हाजिर है ? पंसेरी !...सूने गेह...भरे सिनेमाघर...यही है...जमना...जमना है ?...हा...हा...ही...ही...ऑर्डर ऑर्डर...! माई लार्ड...मुजरिमा की उम्र देखते हुए...माई लार्ड...हुजूर ...अदालत !...

'ज़िंदगी एक ख्वाब है, नहीं जमना...एक सबक है। नहीं...री ...एक तसवीर है, चलचित्र ! यह तो अपनी ही रोशनी है, जो पर्दे पर सारी तसवीरें झलका रही है, भोली लड़की !...हाँ जमनी ! ज़िंदगी एक फिलम है !"

उसने निश्चय किया था, कोर्ट में सब कुछ कह दूँगी। कह दूँगी कि मेरा पति आदमी नहीं है। लेकिन, अब सोचती है—"मैं यह कैसे कह सकती हूँ, इससे मेरे पति की बदनामी होगी। मेरा परिवार लोगों की नज़र में गिर जायेगा।......गिर जायेगा, तो गिर जाये ! मेरा कौन-सा परिवार, मेरा कौन-सा पति..." और जमना की दृष्टि उठती है। वह पति की तरफ देखती है, पति की कातर नज़रें देखती है, और तभी जमना के कल्पित बोल उसके होठों की देहली तक झांककर भीतर लौट जाते हैं। पति के मानस न हो, किंतु जमना में बहुत संकोच है ! —यह संकोच बहुत बुरा है। यह शरम बहुत बुरी है। यह हिचक ही उसे खा गई है ? यह लाज ही गाज बनकर उस पर गिरी है !

"तुम्हें कुछ कहना है ?"

"हुजूर, पगली है !"...

घर-बार, समाज-परिवार, जाति-बिरादरी, और वंश-परम्परा सबको चलाते रहना, जैसे एक अकेली नारी की ही जिम्मेदारी बन गयी है। और जमना इस जिम्मेदारी के मोड़ पर खड़ी है और आस-पास देखती

है तो गहरे सूनेपन और गहरी ख़ामोशी के सिवाय सब कुछ खाली और खोखला है ! ज़िंदगी के इस दूसरे मोर्चे पर भी उसका पति ग़ायब है !

वह अकेली लड़ रही है ! फिर, पति का महत्व ही क्या ?... पति यदि पूर्ति नहीं है तो, उसे रखकर क्या होगा ? पत्नी यदि उसके मन की मूर्ति नहीं है तो, उसे रखकर क्या होगा ? कुछ नहीं होगा जमनी, और सब-कुछ होता रहेगा !

किसी ने उसके कंधे को धीरे से हिलाकर पूछा—

"तुम्हें कुछ कहना है ?"

"जमनादेवी, आप कुछ कहना चाहती हैं ?"

"हुजूर, इससे अधिक मैं और क्या कह सकती हूं ? मैं एक औरत हूँ और मैं एक माँ हूँ । मैंने बच्चा नहीं चुराया, यह बच्चा मेरा है ! दुनिया का हरेक बच्चा मेरा है ! संसार के प्रत्येक शिशु की, जमना, मां है ।........

"हुजूर, मेरे बयान को नहीं, मेरे दिल को देखिये ! गवाहों के हलफ़नामे को नहीं, उनकी आर्थिक अवस्था को देखिये ! भोले साहब, मैं बच्चा क्यों चुराऊँगी, जब कि हरेक बच्चा मेरा है...हुजूर, अगर कानून इस सत्य को नहीं देखता, तो वह जरूर अंधा है और उसकी आँखों का इलाज होना चाहिये। हुजूर...माँ के दिल को कानून से नहीं देखा जा सकता, दूरबीन से उसकी जाँच नहीं की जा सकती; इस सचाई का सबूत है—बालक का वह रोना, जो माँ को पाकर हँसी में बदल जाता है। शिशु की आँखों की चमक में माँ की आँखों की चमक देखिये। अगर आपके पास दिल की भावनाओं को नापने, तोलने और परखने की मशीन हो तो, जमना के दिल को टटोलिए। जब से नीली-वर्दी वाले ये कसाई, ये हत्यारे, उस मासूम को मेरी छातियों की छाया से छीनकर ले गये, तब से, उन छातियों में एक आग सुलग रही है ! आपकी अदालत में उस आग को नापने का यंत्र ज़रूर होगा ! नर्सों के बयान की कोई वकत नहीं, हुजूर, उन्होंने सिर्फ बच्चे जनवाये हैं, खुद कभी एक बच्चा नहीं जना ! फिर वे जनेता के जानने के बारे में क्या

जानें ? कोई पागल भी इस बात पर विश्वास नहीं करेगा कि जमना जिसकी छातियाँ दूध से छलाछल भरी हैं, बच्चा चुराएगी ! हुजूर, बच्चा तो वो औरतें चुराती हैं, जो उन्हें प्यार नहीं करतीं ! जो अपने ही स्तनों से उन्हें दूध नहीं पिलातीं ! जिनके बच्चे दाइयों और नर्सों की गोद में पलते हैं ! मैं तो इस मुन्ने को अपना खून देकर भी पालती । वे तो इसे वक्त पर पानी नहीं पिलाएंगी, सिनेमा-देखने चली जाएंगी...

"हुजूर, सजा दीजिए, चाहे रिहा कीजिए, वह हरेक माँ बाहर रहकर, कारावास में ही है, जिसका मुन्ना, उसके पास नहीं है ! देवकी का कृष्ण यदि उसके पास रहे तो, बंदीगृह भी कृष्ण-मंदिर बन जाये ! और मुझ-जैसी अभागन को, बिना अपने मोहन के, मुक्त करके भी आप बंधन में डाल देंगे ! हुजूर, पर काटकर आजाद करना इसी को कहते हैं !

"ये लोग, जो दर्शकों की गैलेरी में बैठे हैं, हँस रहे हैं ! इसलिए मैं फिर कहती हूँ कि मैंने बच्चा नहीं चुराया, नहीं चुराया ! अब भी हँसते हैं, क्योंकि इनका काम सिर्फ हँसना ही है । बच्चे के प्यार से इन्हें कोई सरोकार नहीं । माँ से इन्हें कोई मतलब नहीं, पिता से इन्हें प्रयोजन नहीं ! ये तो सिर्फ अत्याचार पर हँसना जानते हैं, अत्याचारी पर नहीं, उसका मुक़ाबला करने का साहस इनमें अगर होता, तो ये बेरहमी से न हँसकर, एक बुलंद आवाज उठाते कि किसी गौ से उसका छौना न छीना जाए । किसी माँ से उसका दुलारा दूर न हो । इसलिए मैंने इस बच्चे को नहीं चुराया । हुजूर, प्यार चोरी नहीं है ।...लहलहाते बगीचे के हजारों फूलों में से किसी एक फूल को अपना कहना, 'चोरी है,' यह तो मैंने आज सुना ! आकाश के सभी सितारे हमारे हैं, इस हमारे दावे को जो ठुकराता है, वह चोर है । 'माँ' चोर कैसे कहला सकती है, हुजूर ? या तो वह माँ नहीं है, या चोर नहीं है । चोर, चोर है, माँ नहीं है । माँ, माँ है, चोर नहीं है, इसलिए कहती हूं, माँ को चोर कहना, दूध को जहर घोषित करना है । तब तो छाछ को भी फूँक-फूँक-कर पीनेवाली दुनिया दूध को जहर की आशंका में ठुकरा देगी ! और

शक की दवा तो लुकमान के पास भी नहीं थी, इस नर्स के पास हो तो भले हो ! या थानेदार साहब के पास होगी ! या वकीलजी की जेब में होगी ! हुजूर, आपके पास तो जरूर होगी ?...तब अपना ही शक दूर कर लीजिए कि मैं इस बच्चे की माँ नहीं हूँ। थानेदार जब आया, बच्चा मेरे आँचल की छाया में गेंदा के खिले फूल की तरह सो रहा था, बड़ी मीठी-मीठी गहरी नींद में ! हुजूर, मुजरिमों के गुनाह कबूल करने पर आप बहुत खुश होते हैं। किंतु कभी किसी सोए हुए मासूम नन्हें की, स्वप्नमयी मुसकान देखी है ? उसे देखकर खुश हुए हैं ? हुजूर, प्यार करना गुनाह है, यह, मुझे आज मालूम हुआ है !...'मैं माँ हूँ'—यदि मेरे इन शब्दों पर आपको विश्वास, नहीं, तो मुझसे क्यों कर कुछ कहलवाते हैं ?

'क्या, मेरे ये तीन लफ्ज कीमती नहीं और दूसरे सैंकड़ों लफ्ज कीमती हैं ? जमना तो यही जानती है कि उसके हृदय के साँचे में ढल-कर निकलने वाला हरेक लफ्ज, सही, सीधा और कीमती है। हुजूर मैं बेगुनाह हूँ। मुझे छोड़ दीजिए।....

"आज से मैं वचन देती हूँ कि आगे से किसी बच्चे को प्यार नहीं करूँगी। लेकिन, मैं कह देती हूँ कि अदालत आलिया यह सोच ले कि अगर औरत बच्चों को प्यार करना और उनके लिए जीना-मरना छोड़ देगी, तो क्या होगा ?...मुन्ने राजा—अपने मोहन की माँ जमना और कुछ नहीं कहना चाहती !"

● ●

११ जब चंदा तेरी अटारी पर आए

मां-बाप बचपन में ही अनाथ छोड़कर मर गए। बालक पराई रोटियों पर पलने लगा। पहाड़ी प्रदेश में आवारा घूमते उसकी उम्र बढ़ रही थी। उसे संभालने वाला कोई न था।

एक दिन उसने अपना साथी पा लिया। गिरि-प्रदेश के वन में खड़े तूम्बे के पेड़ से दो तूम्बे काट कर, उसने अपना वाद्य-यंत्र बनाया। सिर पर मयूरपंख सजाया।

सुन्दर बीन पर बालक ने पहली बार जब अपनी उँगली चलाई तो उस बांस और उस तूम्बे के खोखले भाग में बैठा मानो कोई युग-युग का साथी, बोल उठा!

बालक ने बीन को कन्धे से लगाया और उसकी कला-साधना आरम्भ हुई।

बालक ने निश्चय कर लिया कि वह गिरि-वन के झरने-झरने, पेड़-पेड़ और कंकर-कंकर को गीतमय बना देगा। समस्त प्रकृति अवाक् बनकर उसे देखती रही, मानो यह बालक नारदमुनि का वरदान लेकर जन्मा है।

बड़े तूम्बेवाली उस बीन में बत्तीस राग और छत्तीस रागिनियाँ निवास करने लगीं। बालक बीजानन्द की उँगली के पोर का स्पर्श पाते ही तंत्री झंकृत हो उठती।

बीजानन्द के गिरि-प्रदेश के पास ही गोरवी आड़ी नामक ग्राम था। जब इस ग्राम के बाहर बीजानन्द पहली बार पहुँचा तो ग्राम-युवतियां पनघट पर खड़ी किल्लोल कर रही थीं। उनमें से एक अभी

कुमारी थी। उस कुमारी ने जल मांगनेवाले किशोर की ओर देखा और अपना भरा हुआ घड़ा ढुलका दिया।

अधर और नयन मटका कर वह अपनी सहेली से बोली—"बहन, तू इसे जल पिला। मुझे तो, इसका रूप देखकर, न जाने क्या हो रहा है।"

इतना कह कर वह किशोरी, जिसके तन पर छाछ से उठते मक्खन की तरह रूप निरख रहा था, अपनी काली कमली से गोरे अंग ढंकती हुई गांव की ओर लौट चली।

जल पीकर बीजानन्द भी गांव की ओर चला, जहां श्रीमंत चारण वेदा रहता था। उसके आंगन में तीन सौ भैंसें बँधी रहती थीं। प्रभु के चारों हाथों की छत्रछाया इस चारण के मस्तक पर थी।

वेदा की बैठक में जाकर, बीजानन्द ने अपनी तंत्री एक ओर रख दी और विश्राम किया। दीपक की मन्द जोत में देखा, परसने के लिए आनेवाली किशोरी, वही, पनघट वाली गोरी थी। यह थी शेणी, वेदा की एक मात्र कन्या।

भोजन करने के बाद बीजानन्द चाँदनी के प्रकाश में, बाहर आँगन में पड़ी अपनी खाट पर आ बैठा। गर्मी की रात थी। आकाश हीरों से जड़ा था। बीजानन्द ने बीन कन्धे पर रखी और उँगली से तार छू दिया। तन्त्री में सोई हुई, मानो, कोई वनदेवी अपने चिर-वियोग की अनन्त-वेदना का विलाप सुरों में सुनाने लगी।

श्रोताओं के अन्तरतम में एक अकथनीय, असहनीय, अन्तहीन पीर उठी! वे अपने आप को भूल गए।

इस प्रकार वेदा को विमोहित कर बीजानन्द चल दिया। किन्तु, कालान्तर में वेदा के निमंत्रण पर निमंत्रण आने लगे। बारम्बार बीजानन्द गोरवी-आड़ी आने जाने लगा और ढलती रातों में दीवार की ओट बैठी शेणी, बीजानन्द की बीन पर बेचैन होने लगी।

शेणी अपने मन की व्यथा किससे कहे? अपने इस घर में कोई भाभी नहीं, कोई, समीप की सहेली नहीं। गांववाले तो उसे

जोगमाया का अवतार मानते हैं और जानते हैं कि उसने अखंड कुमारी रहने का निश्चय किया है। पिता को स्वप्न में भी ध्यान न था कि उसकी दुलारी कन्या, ऐसे बेढंगे लड़के पर मोहित हो सकती है।

अकेले एक बीजानन्द ने शेणी की लजीली आँखों और थर-थर कांपते अधरों पर प्रीत की छिपी कहानी पढ़ी थी।

एक रात जब वेदा के आंगन में बीजानन्द अपनी बीन-द्वारा रस बरसा चुका था, अत्यन्त प्रसन्न होकर, वेदा ने कहा—"अरे, बहुत दिनों से तू हमें आनन्दित कर रहा है, आज तेरे आनन्द की बारी है। मेरे घर में इतनी गाय-भैंसें हैं, धन-दौलत है। अपने मन की चीज माँग ले भांजे।"

बीजानन्द ने सिर धरती पर टिका दिया। पास की कोठरी में बैठी शेणी के नन्हें अन्तर में सांस नहीं समा रही थी! हृदय धड़क रहा था! कौन जाने बीजानन्द क्या मांग बैठे?

वेदा ने कहा—"मांग ले, झूठ कहूँ तो मुझे सद्गति न मिले।"

बीजानन्द बोला—"जो मैं मांगना चाहता हूँ, वह तुमसे न दिया जाएगा, मामा।"

वेदा ने कहा—"मैं अपनी देह बेचकर भी तेरा सवाल पूरा करूँगा।"

बीजानन्द झट कह उठा—"तो, दे दो शेणी का हाथ।"

वेदा स्तब्ध रह गया! उसकी साँस रुक गई। वेदा ने तड़प कर कहा—"लड़के, सोच-विचार कर माँगना था। तू गली-गली का भिखारी! शेणी का हाथ माँगता है?"

बीजानन्द बोला—"कोई बात नहीं, मामा! मुझ जैसे रंक के लिए विधि ने यह रत्न नहीं रचा है।"

बीजानन्द इतना कहकर, अपनी बीन कन्धे पर रख, निराहार ही चल दिया। पास-पड़ोस के लोगों ने वेदा को बुरा-भला कहा। तब वेदा ने उत्तर दिया—"बीजानन्द को लौटा लाओ।"

बीजानन्द लौटा तो वेदा ने कहा—"यदि शेणी का हाथ चाहता है तो एक वर्ष की अवधि में नौ चन्द्र-चिन्हों से युक्त एक सौ भैंसें ले आ। यदि एक दिन की भी देरी हो गई तो समझ लेना कि इस जन्म में शेणी का मुख देखना भी नसीब न होगा।"

बीजानन्द ने स्वीकार किया।

गांव-गांव जाकर, बीजानन्द ढलती रातों में सहसा अपनी बीन के तारों को छेड़ देता। लोगों की आंखों से निद्रा ओझल हो जातीं। भोर में ग्रामवासी उसे भेंट और उपहार देने आते। बीजानन्द तो एक ही चीज मांगता। "नौ चन्द्र चिन्हवाली भैंस" का सवाल सुनते ही ग्रामवासी मौन हो जाते। ऐसी भैंसें मिलना क्या सहज है? चारों पैर सफेद, पूँछ के छोर पर सफेद बाल, एक स्तन सफेद, ललाट पर सफेद टीका, मुँह सफेद और एक आँख सफेद। ऐसी भैंसें तो सब जगह नहीं मिलतीं और यदि एक भी चिन्ह कम हुआ, तो काम नहीं चल सकता।

बीजानन्द का अनुमान था कि एक गांव से पांच भैंसें मिल जाएँगी और ऐसे बीस गांव घूमने पर एक सौ भैंसें हो जाएंगी। लेकिन ऐसी ऊँची जाति की भैंसें सभी स्थानों पर नहीं मिलतीं। समय व्यतीत होता जा रहा था। बीजानन्द अधीर होने लगा।

प्रतिदिन, खाने-पीने और पहनने की चिन्ता छोड़, वह गाँव-गाँव और डेरे-डेरे घूमने लगा। इस प्रकार सीमाएं पार होने लगीं। उसे ध्यान ही न रहा कि वह कहाँ और कितनी दूर निकल आया है। उसे एक धुन थी—एक सौ नौ चन्द्र-चिन्हवाली भैंसें और प्रियतमा शेणी का मेंहदी रंजित माखनिया हाथ! मुँह से एक ही शब्द निकलता था—"नौ चन्द्र भैंस।" इसी बीच अवधि निकट आ गई।

किशोरी शेणी पनघट, खेत, बगीचे और लम्बी डगर पर, दूर-दूर तक दृष्टि डाल कर देखती। कहीं तो भैंसों की उड़ती पग-रज दिखाई दे जाए। कहीं से वायु-लहरिया बीजानन्द की तन्त्री की झंकार ले आए। अवधि निकटतर आ गई।

पनघट से घर लौटने पर, एक दिन पिता ने पुत्री से कहा—"बेटी शेणी, हलुआ तैयार कर, आज बड़े आनन्द का दिन है, अवधि समाप्त होने आई, बीजानन्द नहीं लौटा।"

शेणी बिसूरती रही, रोती रही। उसने अपने निर्मम-हृदय पिता को हलुआ खिलाया। रातभर वह बीजानन्द की प्रतीक्षा करती रही। बीजानन्द नहीं आया।

भोर में शेणी अपने पिता के सम्मुख हाथ जोड़कर बोली—"बापू, गाड़ी लगवा दो। मैं हिमालय पर गलने जाऊँगी।"

पिता ने कहा—"पागल हो गई है?"

शेणी बोली—"नहीं, अब अवधि पूरी हुई। अब बीजानन्द से हिमालय की गोद में ही मिलन होगा अथवा अगले जन्म में।"

गाँववालों ने बहुत समझाया। शेणी नहीं मानी। उसने अपनी हठ न छोड़ी।

और एक भोर डोली में बैठ कर, "सोलह फूलों की वय वाली" शेणी पिया के देश, हिमालय की ओर चल पड़ी।

मार्ग में वह विलाप करती है। वन-वनान्तर और चर-अचर उसके रुदन से प्रकम्पित हैं—"राह में मैं कुटिया बनाकर रहूँगी, जोगन बनूँगी। कोई मुझे मेरे बीजानन्द का पता तो बताए।"

रास्ते में ग्रामवासी पता बताते और शेणी आगे बढ़ती जाती। उसके सुकोमल पैर लहूलुहान हो गए, फिर भी वह दौड़ती रही। थककर रोती है—"चलने पर पेट में शूल उठता है। दौड़ने में लज्जा आती है। बीजानन्द तो बागड़ प्रदेश के पार उतर गया है। लकड़ी पर अपनी ओढ़नी को ध्वजा-रूप में फहराती हूं, शायद, कहीं दूर जाता हुआ बीजानन्द मेरी इस निशानी को देखकर-खड़ा रह जाए।"

इस प्रकार शेणी हिमालय की चरण-शरण में पहुँची। दुर्गम पथ को पार करती वह ऊँचे शिखरों तक चली गई। उसके मुख से प्रत्येक पद पर एक ही शब्द निकलता था—"बीजानन्द.........बी....जा....नन्द...."

जब वह और ऊँचे चढ़ी तो बीजानन्द का नाम बदल कर "ओंकार" हो गया। कुमारी शेणी के मधुर अधरों को छूकर, उसके अन्तरतम से निकली इस व्याकुल पुकार से अचल हिमराज का रोम-रोम पिघल उठा।

हिमगिरि के अनंत प्रदेशों को पार कर अब शेणी ऐसे क्षेत्र में पहुँची, जहाँ हिम के सिवाय कुछ न था। ऊपर से हिमवर्षा हो रही थी, नीचे भी हिम था। जल भी हिम बना था। सूर्य-प्रकाश का प्रवेश न था। ऐसे सघन प्रदेश में हेमवर्णी शेणी अपनी वियोगिनी देह गलाने बैठ गई। मुँह से अन्तिम बार 'बीजानन्द' और 'ओंकार' निकला।

लेकिन, यह क्या ? जिस हिमालय पर पांडवों की फौलादी हड्डियां गल गईं, वहाँ, शेणी की फूलों-सी काया गलती क्यों नहीं ? शेणी व्याकुल हो गई। वह चिन्तित हो, प्रार्थना करने लगी "हे पिता, हिमालय, हे मोक्षपुरी के द्वारपाल, अपनी गोद में अपनी ही बेटी को स्थान न दोगे ?"

हिम-खंडों से एक मधुर ध्वनि आई—'बेटी, तू कुमारी है। कोई अकेला यहाँ नहीं गल सकता। तेरे अन्तर में तो एक दूसरा व्यक्ति बैठा है, शेणी। उससे विवाह कर ले, तब गलने आना।" शेणी बोली, "मैं तो उसे खोजकर भी न पा सकी। अब लौटकर जाना नहीं होगा। राम ने यज्ञस्थल पर जानकी की प्रतिमा पास रखी थी, मैं भी बीजानन्द की मूर्ति से ब्याह रचाती हूँ।"

फिर हिम का पुतला बनाकर शेणी ने उससे विवाह किया। उसे गोद में लेकर गलने बैठी। अग्नि प्रज्वलित हो रही है, ऐसा उसे भान हुआ। अंग-अंग दहकने लगा। पैरों का रक्त कोई खींच रहा है। घुटनों तक हड्डियां गल गईं। शेणी के मुख पर मुस्कान खिल उठी। अचानक निस्तब्धता भंग हुई—'शेणी, शेणी, मेरी शेणी।'

शेणी बोली—"यह कौन है ? कौन है यह ? यह तो वही है। चला आ, चला आ, चला आ, तो, तू आ गया, बीजानन्द ?"

बीजानन्द की आवाज़ आई—"पहुँचा, मेरी प्राण। एक ही दिन की देरी हुई। तेरे पिता को एक सौ, नौ चन्द्र चिन्हवाली भैंसें सौंप दी हैं।"

तन्त्रीवाला तरुण ऊपरी सिरे पर खड़ा था। गलती हुई शेणी नीचे हिम-कुंड में थी।

बीजानन्द ने कहा—"अब चल, शेणी, अपने गांव चलें।"

शेणी बोली—"घुटनों तक देह गल गई है, बीजानन्द।"

बीजानन्द—"चिन्ता न करो, मैं तुझे अपने कन्धे पर बिठाकर सब तीर्थों की यात्रा कराऊंगा। और तब, हम अपने गांव पहुंचेंगे।"

शेणी ने कहा—"अब लौटना नहीं होगा, बीजानन्द! तेरी मूर्ति से मैंने ब्याह रचाया है। तू मेरे निकट चला आ। समय नहीं है। आ रहा है न? आ रहा है, बीजानन्द। बस, प्राण प्यारे हैं तुझे। कोई बात नहीं मत आ, तेरी मर्जी। पर बीजानन्द, जब-जब चन्दा तेरी अटारी पर आए, मुझे याद कर लेना, इतना करेगा? मेरे बालम!....अच्छा, बीजानन्द, आज मैं मर रही हूँ। मरते-मरते मन में एक कामना शेष रह गई है। उसे पूरी कर दे। एक बार अपनी बीन तो बजा दे।"

कन्धे से तन्त्री उतार कर बीजानन्द बजाने लगा। हिमालय की हिम-जड़ता जैसे चेतन हो गई। अंधकार काँप उठा। हिमालय का कण-कण मस्त हो गया। तन्त्री बजती रही। गीत की ताल पर बर्फ से—"राम, राम, राम" स्वर उठता रहा!

एक ओर धीरे-धीरे 'राम' का सुर शान्त पड़ता गया। दूसरी ओर तन्त्री के तार अधिक जोर से बजते गए। सहसा राम-नाम बन्द हो गया और बीजानन्द के हाथ से तन्त्री छूट कर नीचे गिर पड़ी। उसका मुख्य तार टूट गया। वेदा की पुत्री शेणी के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

बीजानन्द का विलाप, और 'शेणी-शेणी' का स्वर हिमालय की हिम-कन्दराओं को प्रकम्पित करता हुआ चारों ओर लहराने लगा।

१२ मक्खीमार-आन्दोलन

सरकारी प्रचार-अधिकारी के ढाई घण्टे के भाषण के बाद भी श्रोता नागरिकों ने यह स्वीकार नहीं किया कि अधिक मक्खियाँ मारो'-आन्दोलन कोई नई चीज है !

अधिकारी के मंच से नीचे आने की देर थी कि लोगों ने परस्पर कानाफूसी शुरू कर दी और सिर हिला-हिला कर, सबने परस्पर सहमति प्रकट की कि मक्खी मारना इस देश का बहुत ही पुराना पेशा रहा है ! यह और बात है कि जनता की सरकार का ध्यान इस ओर विलम्ब से आकर्षित हुआ है ! जब से इस मुल्क पर विदेशियों की चढ़ाइयाँ शुरू हुईं, इसके धन-जन का अपहरण आरम्भ हुआ और इसकी धरती और इसके धन, धर्म और धैर्य को बार-बार धूल में मिलाया गया ; तब से यह देश—'मक्खी' और सिर्फ मक्खी मारता आ रहा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि किसी भी दूसरे देश और किसी भी दूसरी भाषा में 'खाली बैठे मक्खी मारना'; 'मक्खी छोड़ना और मक्खी निगलना'; 'मक्खी पर मक्खी मारना'; 'मक्खी-सी उड़ा देना' और 'प्रथम ग्रासे मक्षिकापातः' जैसे मुहावरे और छैल-छबीले वाक्य नहीं हैं ! इतना ही नहीं, अनन्त और असंख्य मक्खियों और उन्हें मारने वाले शूरवीरों का इस देश से अटूट सम्बन्ध रहा है —

बड़े शहरों के डॉक्टर अपनी डिस्पेंसरी में बैठे-बैठे मक्खियाँ मारते हैं। कई ऐक्टर स्टूडियो के बाहर और भीतर मक्खियों की तलाश में रहते हैं। वकीलों को मक्खी मारने की आदत कुछ ऐसी पड़ गई है

कि मुवक्किलों को मक्खी समझ कर मारते हैं और जब से रामराज्य का शुभागमन हुआ और पुष्पक विमान में बैठकर, आज़ादी की अप्सरा, नॉयलोन की साड़ी पहनकर, समुद्र पार से आई, सारा दृश्य ही बदल गया !

अब तो जिसे देखो मक्खी मार रहा है ! पंचायत समितियों के दफ्तरों में प्रसार-अधिकारी, रेडियो के स्टूडियोज में सभी कर्मचारी, विकास-विभाग के हाकिम जी भर कर मक्खियाँ मारते हैं और इसी वफादारी और कार्यकुशलता के लिए भारी-भरकम वेतन पाते हैं। बूढ़ी सरकार—जिसे आँखों से कम दिखाई देता है, कानों से जो कम सुनती है, पैरों से लड़खड़ाती चलती है, पीठ जिसकी धनुष की कमान है, माथे में जिसके जूँओं के परिवार बढ़ रहे हैं—बैठी-बैठी मक्खियाँ मारती है, तभी न मक्खीमारों को बड़े-बड़े ओहदों पर बिठा दिया है। 'बैठो, मक्खीमारो'—इस सरकार का सबसे महान्, ऐतिहासिक और बुलन्द एक नारा है !

इस नारे की गूँज मन्त्रियों के दैनिक जीवन में मिलती है ! वे तन्मयतापूर्वक मक्खी मारते हैं और मारने वाले बेकारों की वृद्धि करते हैं। बम्बई में डेढ़ लाख मैट्रिक पास बेकार, मक्खियों की खोज में तल्लीन, फुटपाथों पर भटकते रहते हैं और उनके चचेरे भाई पैंतीस हज़ार ग्रेज्युएट 'मक्खी महास्तोत्र' का पारायण करते रहते हैं !

इसलिए, 'मक्खीमार-आन्दोलन-प्रचार-अधिकारी' का भाषण; लोगों की मक्खीमार-भावना और इस कला के प्रति उनकी अनन्त आस्था के कारण, फीका पड़ गया !

फिर भी, लोगों के मन में आशा बँधी कि बरसों, युगों और शताब्दियों से वे जिस कला की साधना करते आ रहे हैं, आखिर, आज उसका—'मक्खीमार मन्त्रालय' स्थापित कर, सरकार ने अपनी लोकहित-चिंतना एवं समाजकल्याण-प्रवृत्ति का पूरा-पूरा परिचय दिया है !

यद्यपि प्रचार-अधिकारी का भाषण समाप्त होते ही लोग बिखरने लगे, परन्तु रुक-रुक कर यह घोषणा भी सुनने लगे कि जो व्यक्ति

अधिक से अधिक मक्खियाँ मारेगा, उसे अधिक से अधिक पुरस्कार मिलेगा। इतना ही नहीं, राजकीय रूप से उसे सम्मानित भी किया जाएगा। मेजर गगारिन की भाँति राजधानी में उसका स्वागत किया जाएगा और स्थान-स्थान पर उसके नाम पर तोपों की सलामी दी जाएगी। वीर मक्खीमार के बच्चों को इस कला में कौशल और विशेष योग्यता पाने के लिए अमरीका भेजा जाएगा और इस आयोजन का सारा खर्च, रामराज्य की--समाजवादी ढंग के समाजवाद की--सरकार के ढंग की सरकार, उठाएगी !

यश-कीर्ति और धन-सम्पदा-प्राप्ति का अनोखा अवसर नगर में उपस्थित हुआ था !

यों, जब इस घोषणा की चर्चा घर-घर में फैल गई तो लोग बहुत खुश हुए। क्या महाजन, बनिए, पंसारी, दुकानदार, साहूकार, कर्जदार, बेकार, फिल्मों के एक्स्ट्रा, पढ़े-लिखे बाबू, नई कविता के स्वनामधन्य कवि; गलेबाज कविसम्मेलनिया गायक—सभी अपनी खुशी की खाई में खोए-खोए से पुरस्कारों के सपने देखने लगे ! लेकिन सरकारी और गैर-सरकारी दफ्तरों के उन कर्मचारियों के दिल बैठ गए, जिन्हें कार्यभार के कारण अवकाश नहीं मिलता था। जो बेचारे—सिर्फ अपना ही काम नहीं करते थे, वरन् अपने--छुट्टियों पर गए साथियों का और अपने अफ़सरों की बीवियों का काम भी करते थे। इन लोगों में अधिक संख्या उन चपरासियों और क्लर्कों की थी, जिन्हें वेतन तो कम मिलता था, मगर काम ज्यादा करना पड़ता था। इसलिए, इन बेचारों को बड़ी निराशा हुई।

सबसे ज्यादा खुश पुलिस के सिपाही और स्कूलों के अध्यापक थे।

सिपाही थाने में बैठकर मक्खियाँ मार सकते थे और अध्यापकों को अपनी कक्षा में मक्खियाँ मारने का अवकाश सुलभ था।

नगर में इश्तहार बँट रहे थे—

''आज शाम को स्वास्थ्य मन्त्री लक्खीलालजी और उप स्वास्थ्य-मन्त्रिणी कुमारी मकड़ी देवी स्थानीय टाउनहॉल में, हजारों नागरिकों

की उपस्थिति में, 'मक्खीमार-सप्ताह' का उद्घाटन करेंगे।"

मंत्री लक्खीलालजी की विशेषता यह थी कि उनकी बैठी हुई नाक के नीचे उठी हुई मूंछें दो मक्खियों-सी प्रतीत होती थीं! मंत्रीजी की देखा-देखी स्वास्थ्य विभाग के कई उच्चाधिकारियों, डॉक्टरों और कम्पाउण्डरों ने भी 'फ्लाई कट' मूँछें रखी थीं।

मकड़ी देवी का असली नाम कुमारी वासना वर्मा था, परन्तु वह हमेशा एक ही डिज़ाइन की साड़ियां पहनती थी, जिन पर मकड़ियों और उनके जाले-जैसी आकृतियाँ उभरी रहती थीं, इसलिए मनचले लोगों ने वासना देवी को 'मकड़ी देवी' कहना शुरू कर दिया था। लेकिन, जब से मक्खीमार-आंदोलन की आयोजना और प्रस्तावना बनी, 'मकड़ी देवी' नाम सार्थक हो गया। क्योंकि मकड़ी का मक्खी से जो अनादि सम्बन्ध है, वह चरितार्थ हुआ और मकड़ी बड़ी शान से, मकड़ियों की आकृतियों से अलंकृत साड़ी पहन कर घूमने लगी।

शाम को ठीक सात बजे मंत्री लक्खीलाल और मकड़ी देवी टाउन हॉल के विशाल द्वार पर पधारे।

उनके आते ही लॉन के दोनों ओर खड़े हुए लोगों ने, अपनी उँगलियों से मक्खी-मारने की आवाज़ पैदा कर, उनका स्वागत किया।

नगरी की अनेक महिलाओं ने अपनी हथेलियों पर मक्खियों की आकृतियाँ बनवाई थीं, सो "मकड़ी देवी जिंदाबाद! मक्खी देवी मुर्दाबाद!!" के नारों के साथ, वे मेंहदी मंडित अपनी हथेलियों पर उँगलियों की चोट करने लगीं। इस तरह, मक्खी मारने की ध्वनि का प्रचार हो रहा था!

मंत्रीजी के आगे-आगे, स्वतंत्र पार्टी के प्रचारक कवि भँवरजी कँवरजी की भाँति, एक भड़ैत कवि महोदय पटकजी चल रहे थे। वे लम्बा हाथ और घूँसा उठा कर ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे थे—

"हिन्दुस्तानी! होशियार"

दरअसल अपने नारेवादी काव्य की आधी पंक्ति पटकजी ललकारते और उत्तर में आधी जनकंठ से गूँजती। जैसे वे कहते—"हिन्दु-

स्तानी......" तो जनता उत्तर देती—"होशियार !" इसी प्रकार "उठ खड़ा हो !"..........उत्तर मिलता—"मक्खी मार !" फिर यह महान् राष्ट्रीय गीत अपने पूरे रिद्म पर, टेम्पो पर उठता—

"हिंदुस्तानी.......होशियार !
उठ खड़ा हो......मक्खीमार !!
राष्ट्रपति का आया तार—
मक्खीमार, मक्खीमार, मक्खीमार, मक्खीमार !!"

पटकजी की छवि देखते ही बनती थी। पान की पीक होठों से बाहर कई रेल्वे लाइनों को क्रास कर गई थी। बड़े-बड़े मैले-कुचैले केश लम्बाई में कृपलानी के केशों को मात कर रहे थे। आँखें मदिरा के नशे में लाल थीं। संग में उनकी एक शिष्या थी, स्थानीय सेठ की लड़की—मधुकान्ता। एकदम दुबली, एकदम काली और एकदम फैशनेबल। वह अपने पटकजी की छवि देख-देखकर और-और मोहित हो रही थी।

नगरपालिका के सुसज्जित हॉल में मंत्री महोदय को एक बंद बोतल में भरी हुई मक्खियाँ भेंट कर-चेयरमेन ने अपना 'स्वागत भाषण' पढ़ा। तदनन्तर मंत्रीजी से प्रार्थना की कि अब कार्यक्रम के अनुसार, आप कुछ मक्खियाँ मार कर, सप्ताह का उद्घाटन कीजिए ! भला, आपके उपस्थित रहते दूसरा कोई व्यक्ति सबसे पहले इस कार्य को हाथ में लेने की हिमाकत कैसे कर सकता है !

मंत्रीजी के खड़े होते ही सभी सिविल और मिलिट्री उच्चाधिकारी हॉल में एक ओर अदब से खड़े हो गए। मैदान में रह गए मात्र दो-चार व्यक्ति—मंत्रीजी, मंत्रिणीजी, चेयरमेन साहब, संसद सदस्य सेठ डी. डी. टी. दास और नगर कांग्रेस के प्रमुख। इसके अतिरिक्त एक नौकर भी था। वह नई से नई वर्दी पहने, दोनों हाथों में चाँदी की एक थाली उठाए हुए था। इस थाली में मन्त्रीजी के हाथों मरी हुई मक्खियाँ रखी जाने वाली थीं। थाली में चाँदी के कुछ 'वर्क' भी थे, जिनमें मक्खियाँ लपेटी जाने वाली थीं। इसके बाद मन्त्रीजी के हाथों इन मरी हुई मक्खियों की भव्य एक समाधि बनने वाली थी।

नगरपालिका ने इस समाधि के लिए दस हज़ार रुपये मंज़ूर किये थे।

हॉल के फ़र्श पर, इधर-उधर गुड़ डाल दिया गया था। और अब उस पर लाखों मक्खियाँ भिनभिना रही थीं।

मन्त्रीजी बड़े साहस और धैर्यपूर्वक आगे बढ़े और उन्होंने लपाक से अपनी मुट्ठी में दो-चार मक्खियों को गिरफ्तार कर लिया, परन्तु जब तक वे सम्हलें-सम्हलें, तब तक मक्खियाँ उँगलियों की दरारों से फरार हो गईं। मन्त्रीजी के चेहरे पर, पलभर के लिए, पहली हार की उदासी छा गई और उन्होंने मकड़ी देवी की ओर देखा। मकड़ी देवी ने साव-धानी से आँख मारकर मक्खी मारने का इशारा किया कि डरो नहीं, डटे रहो!

मन्त्री महोदय ने दूसरा वार किया।

मक्खी उनके दोनों हाथों की चपेट में चकनाचूर हो गई। तुरन्त बड़े-बड़े अधिकारी और विशेषज्ञ दौड़े और मरी हुई मक्खी के शव को ग़ौर से देखने लगे और प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

लोग तालियाँ बजा रहे थे। चपरासीगण चाँदी की थाली में उस भाग्यशालिनी मक्खी के शव को सजा रहे थे।

मगर, इधर, इस महान् ऐतिहासिक विजय पर भी, मन्त्रीजी का बुरा हाल था—एक मक्खी मार लेने के इस घोर परिश्रम के कारण, उनकी साँस फूल रही थी। आँखों के किनारे जल भर आया था। भाल पर पसीने की बूँदें झलक उठी थीं। धोती की एक 'लुंगी' खुल गई थी। कोट का एक बटन टूट गया था। एक पैर का चप्पल निकल गया था।

फिर भी सच्चे सत्याग्रही की भाँति मन्त्री महोदय सीना फुलाए मैदान में डटे थे। ज्यों-ज्यों लोग सराहना करते जा रहे थे और तालियों की गड़गड़ाहट के द्वारा उनका अभिनन्दन करते जा रहे थे, त्यों-त्यों नकली मुस्कान का आवरण ओढ़ कर मन्त्री महोदय अपनी शहादत के एहसास पर सीना फुलाते जा रहे थे और नज़रें झुकाकर सीने की चौड़ाई का अनुमान लगाते जा रहे थे और प्रतिपल उसे पाव-आधा इञ्च फुला ही लेते थे।

खुशामदियों का तांता लगा था। कोई कह रहा था—

"हुजूर ने ग़जब कर दिया। ऐसा निशाना! वाह कोई जर्मन जंडल देखे तो तबीयत उसकी बाग-बाग हो जाए! मुबारक़ हुजूर मुबारक़ !!"

कोई कहता था—

"बधाई श्रीमान्, एक ही बार में आपने सारा मैदान लाशों से पाट दिया! प्रधानमन्त्री सुनकर ज़रूर बधाई का तार भेजेंगे।"

इस खुशामदी से बाजी मार लेने का प्रयत्न, दूसरा परम खुशामदी कर रहा था—

"अरे भाई, तार की क्या कहते हो! हमारे पूज्य राष्ट्रपति जी को ज्यों ही रिपोर्ट मिली कि वे अवश्य, हमारे परमादरणीय मन्त्रीजी का शुभ नाम, "वीरचक्र प्रथम श्रेणी के लिए, लिख लेंगे।"

"वाह! वाह! क्या पते की बात कही है, डायरेक्टर साहब ने! वल्लाह, मंतरी महोदिया का कोई जोड़ नहीं! पूरे सूबे में ऐसा हुक्मराँ दूसरा नहीं देखा, जनाब आपकी हुकूमत में ज्ञान और अज्ञान, मौत और मरीज़, ग़रीबी और मँहगाई, बेरोज़गारी और रेल की पटरी, मजबूरी और कर्जदारी एक साथ, शेर-बकरी की तरह, एक घाट पर पानी पीते हैं! सुभानल्लाह!"......

"वेल बिगिन् इज़ हाफ डॅन!" चुरूट और पतलून साहब कह रहे थे। उनकी मेमों में, मन्त्रीजी के निकट से निकट पहुँच जाने की, होड़ थी।

अब दूसरे प्रहार की तैयारी शुरू हुई।

वाद्य बजने लगे। चपरासी मुस्तैद खड़े हुए। चेयरमेन साहब टोपी सँभाल कर आगे बढ़े। फौज के सिपाही अटेंशन में खड़े हो गए।

फिल्मों के फेल होने वाले 'हिट्-सांग' की भाँति, हिट् मारने के लिए, मन्त्री महोदय अपनी थल्-थल् तोंद के भार से भूमि को थर्राते हुए आगे बढ़े!

भयानक उस भीड़ में से अचानक कवि पटकजी ने, प्राचीन चारण-

भाटों की भाँति वीर वाणी में, अपने रणवीर, युद्धनायक मन्त्रीजी का उद्‍बोधन किया—

"हिन्दुस्तानी...होशियार !
उट्ठ खड़ा हो...मक्खीमार !!"

इस ललकार को सुनकर मन्त्रीजी की नसों में बहने वाला पूर्वजों का लाल-काला लहू खौल उठा और उन्होंने तपाक से ताली बजाई, चुटकी भरी और तीन-चार मक्खियाँ चाँदी के थाल में डाल दीं !

सभाहॉल में कुहराम मच गया ! लोग टोपियाँ उछालने लगे। मेमें मन्त्रीजी की इस वीरता पर अंग्रेज़ी बोसे फेंकने लगीं !

कवि पटकजी दुगुने जोश से गला फाड़कर गरजने लगे।

अब तो मन्त्रीजी मस्त हाथी के समान आगे-पीछे, इधर-उधर, ऊँचे-नीचे, गोला-गोल घूमते हुए, मक्खियों का भीषण संहार करने लगे ! जैसे, दोनों हाथों से ताल बाजते हुए संत तुकाराम, रामदास और चैतन्य महाप्रभु के चित्र हम देखते हैं, वैसे ही, मन्त्रीजी अपने सिर से ऊपर हाथ लम्बाए पटापट, सटासट, झटाझट, खटाखट मखियाँ मारने लगे !

और, लोग देखकर दंग थे कि एक भी मक्खी उनके वार से बचकर नहीं जा सकती थी !

लेकिन एक बिगड़ैल मक्खी ने बग़ावत, गद्दारी, नमकहरामी की और वह 'त्राहि-त्राहि' पुकारती-सी, मन्त्रीजी के वार से बचकर, भाग निकली और सीधी मकड़ी देवी के उभरे-उभरे-से विशाल वक्ष पर बैठ गई ! मन्त्रीजी अपनी धुन की लगन में मगन थे, उन्हें ध्यान न रहा और मक्खी के पीछे झपटता हुआ उनका हाथ, सीधा मकड़ी देवी के सीने पर पड़ा !

मकड़ी देवी अपनी जगह डटी रही।

"वेल्-डॅन, वेल्-डॅन" का घोर-शोर-रोर उठा। और मकड़ी देवी ने मन्त्री महोदय की ओर इस प्रकार देखा, मानो वह कृतार्थ हुई है !

बाजे बजने लगे। नारे लगने लगे। फूल बरसने लगे और मक्खियाँ मरने लगीं। मक्खियों के लोभी कुछ लोग अपने ही गाल पर

तमाचा मार रहे थे और मक्खियाँ थीं कि आत्मरक्षा के निमित्त इधर से उधर उड़ रही थीं। सुन्दरियों ने अपनी वेणियों के फूल नोच लिए, कपोलों का पाउडर पोंछ लिया, तब कहीं जाकर एकाध मक्खी हाथ आई। परन्तु जब मक्खी पकड़ में आ जाती तो शिकारी की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। कभी-कभी 'साँप निकल गया और लाठी रह गई' की तुकतान में 'मक्खी निकल गई और पंख हाथ में रह गया' का दृश्य साक्षात् हो उठता! फिर भी समूचे हॉल में 'कृष्ण-करीम, राम-रहीम' की धुन पर 'मिल गई-मिल गई' और 'पकड़ो-पकड़ो,' 'शाबाश-शाबाश' और 'वाह-वाह' की ध्वनियाँ उठ रही थीं!

मन्त्री जी के स्नान और चाय-पान के पश्चात् 'डायरेक्टर ऑफ़ इन्फ़ॉरमेशन' ने 'मक्खी-लॉटरी' की योजना समझाई। 'मक्खीमार महोत्सव' प्रतिवर्ष इसी दिन मनाने की घोषणा सरकारी तौर पर की। मक्खीमारकों के लिए तीन श्रेणी की तीन उपाधियों की सूचना भी दी—'मक्खीमार पदक-तृतीय श्रेणी; 'मक्खीमार-महारत्न द्वितीय श्रेणी' और 'महामक्षिका-मरण-महोत्सव-महारथी प्रथम श्रेणी' की उपाधियाँ घोषित हुईं!

इसके पश्चात् साधारण पारितोषिक और मरी-मक्खी खरीदी के दर ज़ाहिर किए। और प्रति छोटी मक्खी पाँच नए पैसे, प्रति बड़ी मक्खी दस नए पैसे और प्रति गर्भवती मक्खी के पच्चीस नए पैसे 'राजमान्य-दर' रखे गए।

इस घोषणा के आघोषण पर सिपाहियों की बीवियाँ समग्र रूप से ईश्वर को धन्यवाद देने लगीं और उन्होंने पुलिस लाइन्स के अपने क्वार्टरों में रात्रि-जागरण और कथा-पारायण का आयोजन किया। अध्यापकों की पत्नियां भी कम प्रसन्न न थीं, परन्तु चूंकि वे कुछ पढ़ी-लिखी थीं और अपने पतियों के साथ सिनेमा और सैर-सपाटे के लिए जाती थीं, अतः उन्होंने 'मक्खीमार-आन्दोलन' में सक्रिय रूप से भाग लेने का निश्चय किया। उनकी भीड़ ने इस आन्दोलन को महान् और प्रथम कोटि का सामाजिक कार्य स्वीकार किया। परन्तु उन्होंने इस बात को

घोषणा कर दी कि वे मक्खियाँ तो मारेंगी, मगर पैसे नहीं लेंगी।

अब बाजार की हालत यह हुई कि चीनी और गुड़ मिलना मुश्किल हो गया। प्रतिपल उनके दाम बढ़ने लगे और इस पर भी खुली जलेबियाँ बेचने वालों और खुले हुए गुड़ और मीठे के व्यापारियों की पौ-बारह थी। वे अपने तराजू में एक बार जलेबियां तोलते तो दूसरी बार मरी हुई मक्खियाँ। जलेबी के ग्राहकों पर निगाह रखनी पड़ती थी और उन्हें आग्रहपूर्वक बुलाना पड़ता था परन्तु मरी हुई मक्खियों के खरीददारों का तो 'क्यू' लगा हुआ था। ये खरीददार दो रुपये सेर के भाव से खरीदकर, मजे से चार रुपए सेर के भाव पर, सरकारी खजाने पर दे आते। इनमें से जो लोग अफसर या हुक्काम थे, वे अपने से बड़े अधिकारियों को खुश रखने के लिए मरी हुई अपनी मक्खियाँ पेश कर रहे थे।

जब किसी अधिकारी के सामने मरी हुई मक्खियों का दोना रख दिया जाता, तो उसकी बांछें खिल उठतीं। स्कूल की अध्यापिकाएँ चीनी की प्लेटों में मक्खियाँ रखकर उन पर कढ़ाई और बुनाई के चित्रों से अलंकृत रेशमी रूमाल ढँककर प्रधानजी के पास ले जा रही थीं। परन्तु इन बेचारियों को मक्खी मारने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, क्योंकि जब-जब वे अपने हाथ, हथेली या चुटकी का वार करतीं, तो उनकी कलाइयाँ किसी-न-किसी वस्तु-पदार्थ से टकरा जातीं और चूड़ियाँ टूट जातीं। कइयों की गोरी कलाइयों पर खून की बूँदें छलक आई थीं और कइयों के नाखूनों से नेल-पॉलिश निकल गई थी।

सारे शहर की मरी हुई मक्खियों से भरे हुए डिब्बे उस बड़े दफ्तर में ले जाए जा रहे थे, जिसे सरकार ने स्थानीय सेठ के एक बड़े भवन का 'एमर्जेन्सी-रिक्वीजीशन' करके नया महकमा खोला था।

इस समय इस महकमे में लगभग दो सौ आदमी काम कर रहे थे। सबसे बड़ा अधिकारी था—"निखिल-मक्खी-निवारण-महानिर्देशक।" उसके बाद असिस्टेंट, असिस्टेंट का डिप्टी और उसके बाद तो कई छोटे-मोटे इन्स्पेक्टर और ऑफिसर थे। दफ्तर में लगभग दस टाइपिस्ट और बीस क्लर्क काम कर रहे थे। इनके अलावा चालीस पेकर डिब्बों

में सारा माल बन्द करके, उन पर लेबल लगा रहे थे।

एक केबिन में अस्थायी अनुसंधानशाला की स्थापना की गई थी और इस समय एक चीनी और दो हिंदुस्तानी वैज्ञानिक विशेषज्ञ बैठे मरी हुई मक्खियों की रिपोर्ट तैयार कर रहे थे। हिन्दुस्तानी; चिमटे से पकड़कर मक्खी-विशेष को महान चीनी विशेषज्ञ (इसे सरकार ने सात हजार मासिक पर बुलवाया था।) की हथेली पर रख देता और चीनी उसे उलट-पलट कर देखता, सूँघता और कभी-कभी जीभ पर रखकर, बड़े जोर से जीभ चटकाता। ज्यों-ज्यों मक्खियों के सीलबंद डिब्बों का ढेर बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों चीनी अधिकारी का हर्ष भी बढ़ता जा रहा था। वह यदा-कदा पेकिंग-विभाग का चक्कर लगाता और जब देखता कि किसी मक्खी का प्राणांत भली भाँति नहीं हुआ है तो उसे अपने हाथ की हथौड़ी से 'लिबरेट' कर देता। 'मुक्ति सेना' का यह एक महान् सैनिक इस प्रकार भारतीय मक्खियों को मुक्त करके आह्लादित हो रहा था। उसके दफ्तर से, सैंकड़ों लारियों में लद-लद कर सारा माल स्टेशनों की ओर जा रहा था, जहाँ मक्खीमार-स्पेशल ट्रेनें' निरंतर माल ढो रही थीं। इन ट्रेनों के कारण मुसाफिर-गाड़ियाँ बन्द कर दी गई थीं और बीच के सारे स्टेशनों पर सशस्त्र सैनिकों का पहरा बिठा दिया गया था।

इधर नगर में मक्खीमारकों के जुलूस निकल रहे थे। केवल गमछा या लँगोट पहने, भुजाओं को तेल से चमकाकर पहलवान-मक्खीमार भीड़ के आगे-आगे, सीना फुलाए चल रहे थे। उनके भी आगे ढोल और बैंड-बाजे बज रहे थे। और झरोखों और गैलरियों से नागरियां पुष्प वर्षा कर रही थीं। आगे-आगे कुछ नौजवान जोर-जोर से नारे लगा रहे थे—'मक्खी मारना राष्ट्र का परम कर्त्तव्य है', 'मक्खियाँ मुल्क की दुश्मन हैं', 'वेदों में मक्खियाँ मारने का उल्लेख है', 'गीता के अनुसार आप चाहे जिसकी मक्खी को मार सकते हैं, चाहे वह आपके चाचा, मामा, दादा या नाना की हो', 'महान मक्खीमारों की जय हो' और 'मक्खीमार आन्दोलन जिन्दाबाद !'……आदि पोस्टर लेकर चल रहे थे।

इन नारेबाजों की मार्च करती हुई टुकड़ी के बीच में एक बड़े भाले की नोक पर, एक बहुत बड़ी मक्खी टँगी हुई थी और उसके आस-पास कुछ उत्साही नागरिक नंगी तलवारें लेकर चल रहे थे। भारत के भव्यातिभव्य, शौर्यातिशौर्य का पूर्ण प्रदर्शन हो रहा था।

पूरे सप्ताह भर सरकार के प्रचार-केन्द्रों और आकाशवाणी के सभी स्टेशनों द्वारा, सभी भाषाओं में मक्खीमार-आन्दोलन के विषय में भाषणों, वार्ताओं और नाटकों का ताँता लग गया। आकाशवाणी के प्रोड्यूसर कवि गीत और सहगान लिखने में तन्मय हो गए। उनकी इन रचनाओं ने अतिशीघ्र लोकप्रियता प्राप्त कर ली, क्योंकि ये सभी अधिकारी बरसों से आकाशवाणी में मक्खियाँ मारते आ रहे थे। मक्खी मारने की अपनी निपुणता के कारण ही रेडियो-कमेटी ने इन्हें उच्चपदों पर नियुक्त किया था। बड़े-बड़े शिकारियों के अनुभव भी प्रसारित हो रहे थे, जैसे—शेर मारने से भी मक्खी मारना अधिक कठिन कार्य है। सेना में मक्खियों को गोली मारने की प्रतियोगिताएं चल रही थीं। अखाड़ों के पहलवान हजारों लोगों की भीड़ के सामने मक्खियों को लाठी से मारने की कला का प्रदर्शन कर रहे थे।

शिक्षा-विभाग ने नया नियम बनाया—जो विद्यार्थी कम-से-कम तीन सौ मरी मक्खियाँ जमा करा देगा, वही परीक्षा में बैठने पाएगा। प्रधानाध्यापकों की वेतनवृद्धियाँ रुक गईं। बेचारे बूढ़े और गूँगे-बहरे प्रधानाध्यापक, जिन्हें आँखों से भी कम दिखाई देता था, काँपते हुए हाथों से मक्खियाँ मारने का प्रयास कर रहे थे।

जुलूस और उद्घाटन के अंत तक, मंत्री महोदय लक्खीलालजी और उपमंत्रिणी मकड़ी देवी थकान से चकनाचूर हो गए थे। अतः शाम होते-न-होते लक्खीलालजी भंग का गोला चढ़ाकर और मकड़ी देवी 'शैम्पैन' का पेग पीकर, जल्दी ही अपने-अपने अंतःपुरों में प्रविष्ट हो गए थे।

अभी वे कठिनाई से दो घंटे विश्राम कर पाए होंगे कि सेक्रेट्री ने आकर धीमे से जगा दिया—"हुजूर, शहर के कुछ प्रतिष्ठित नागरिक,

डॉक्टर, हकीम और वैद्य आपसे मिलने आए हैं, और उनकी भीड़ बाहर खड़ी आपकी आज्ञा चाहती है।"

मंत्री महोदय आँख मलते हुए पलंग पर बैठ गए और कुछ सोचकर बोले—

"अच्छा, उनसे कहो कि अपने पाँच समझदार नेताओं को भीतर भेज दें।—और सुनो, जब वे आएं तो तुम उन्हें बैठक में बिठा देना।" मंत्रीजी इतना कह पाए थे कि पास के कमरे से मकड़ी देवी की चीख-पुकार सुनाई दी। लक्खीलालजी जब दौड़कर उधर गए तो देखा, मकड़ी देवी अस्तव्यस्त दशा में बाल बिखराए पलंग पर बैठी, फटी हुई आँखों से अपने चारों ओर देख रही हैं!

मंत्रीजी को देखकर मकड़ी देवी ने साड़ी को ठीक किया और मुसकराकर कहने लगीं—"कुछ बात नहीं, दादा साहब, सपना देख रही थी। मैंने देखा—हजारों-लाखों मधु-मक्खियों ने मुझे घेर लिया है और वे कह रही हैं, हम तुमसे अपनी बहनों का बदला लेंगी। इसके बाद वे मेरे शरीर पर, अंग-अंग पर चिपट गईं, मैं चिल्लाई और नींद खुल गई।" इतना कहकर मकड़ी देवी ने बोतल से एक प्याली भरी और उसे एक ही घूँट में पी गई—'अब मुझे नींद आ जाएगी।'

मंत्रीजी आवेदनवादियों से मिलने के लिए चले गए। कुछ देर बाद मकड़ी देवी भी उनके पीछे-पीछे चली।

बैठक में पहुँचकर उन्होंने पाँचों सज्जनों का स्वागत किया और बड़े ही कोमल और मधुर कंठ से पूछा—"मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

इस पर, एक वृद्ध सज्जन, जो शहर में दाढ़ीवाले हकीम के नाम से मशहूर थे; कहने के लिए कांग्रेसी थे, पर पिछले दिनों मध्यप्रदेश में दंगे कराने में इनका प्रमुख हाथ था, अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—"हुजूर, जब से सरकार की तरफ से ये मखियामार आन्दोलन चला है, हमारे बच्चों को रोटी ही नसीब नहीं होती। दूर कहाँ जाएं? मैं अपनी ही मुसीबत बयान करूँ, पिछले हफ्ते बमुश्किल हैजे

के दो मरीज़ आए थे, उन्हें दवा देकर दुरुस्त किया और दिल को राहत मिली और उम्मीद बढ़ी कि खुदा ने चाहा तो इस साल सीज़न पर हैजे के सौ-दो-सौ केस मिलेंगे, मगर सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। हुजूर, इन गरीब हकीमों की रोजी-रोटी मत छीनिए।"

वैद्य पकौड़ीमल ने अनुमोदन किया—"श्रीमान्जी, पैसा किसे कहते हैं, यह हफ्ते भर से नहीं जाना। हुजूर माई-बाप हैं, कोई राह, कोई उपाय निकालिए, ताकि हम अपनी रोजी से लगे रहें।"

डॉक्टर 'चमड़ीधर' ने अपनी गर्दन लम्बाकर कहा—"साहब, हमारे पेशे के लोग तो, यों भी सरकार के हुक्म की तामील करते आ रहे हैं। हम कई सालों से मक्खियां मारते आ रहे हैं और हमारी पालसी यह रही है कि मक्खियां तो मारें पर, इतनी ज्यादा नहीं कि उनका नामोनिशान ही मिट जाए। क्योंकि मक्खियाँ न रहेंगी तो बीमारियां न रहेंगी और बीमारियाँ न रहेंगी तो डॉक्टर न रहेंगे, और डाक्टर न रहेंगे तो मिनिस्टर भी न रहेंगे। साहब, यही 'मक्खीमार आंदोलन' की सियासी कमजोरी है, जिसकी तरफ मैं आपका ध्यान खींच रहा हूँ, क्योंकि आखिर वही लोग सबसे ज्यादा वोट देने के लिए उत्साह-प्रदर्शन करेंगे, जो सबसे ज्यादा बेकार होंगे। और बेकार आदमी ही बेकारों को बखुशी वोट देते हैं। मंत्री भी, आखिर, हम 'मक्खीमार-बेकार बाबू साहब' यानी 'एम. बी. बी. एस.' लोगों का अपना आदमी है। हम आए हैं तो, आपको कोई रास्ता दिखाना ही पड़ेगा।"

मकड़ी देवी जो अब तक चुप थी, बोली—"आप लोग जानते हैं—सरकार ने लाखों रुपए खर्च करके इस आन्दोलन को चलाया है, सो, अगर आप इसे बन्द कराना चाहेंगे, तो भी, लाखों नहीं तो हजारों का खर्च होगा ही।" मकड़ी देवी ने अपने मंत्रीजी की ओर देखकर इशारा किया। लेकिन इस इशारे को वैद्यराज पकौड़ीमल ने भी झेल लिया। तुरन्त भीतरी जेब में हाथ डाला और सौ-सौ के कई नोट सामने रख दिए। देखकर, मंत्रीजी की नींद की खुमारी उड़ गई। गद्गद् नेत्रों से नोट-नारायण के दर्शन कर पुलकित होने लगे। फिर बोले—"इतने

से तो काम नहीं चलेगा ।"

अब हकीम साहब ने अपनी शेरवानी की कई जेबों को टटोला, बमुश्किल उन्हें याद आया कि बंडी की जेब में बटुआ बैठा है, निकाल कर नोट धर-दिए । डॉक्टर साहब ने भी दिल को कड़ा कर नोट निकाले ।

"बस ! बीस हजार !" मंत्री बोले ।

"सिर्फ बीस हजार !" मकड़ीदेवी ने कहा—"अब आप तशरीफ लाए हैं तो मैं अधिक जोर नहीं दूँगी । कल तक दस हजार का प्रबंध और कर दें ।""इसके अलावा आपको एक और काम करना होगा, जिसे आप अपने मरीजों की मदद से बखूबी कर सकते हैं—कल जब मक्खी-मार आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं और प्रचारकों का जुलूस निकले, आप अपने आदमियों से उन पर पत्थर फिकवाइए और सड़क पर कीचड़ तो है ही, वह भी खूब उछाला जाए ! कल दुकानें अपनी बन्द रखिए और 'डेलिगेशन' के रूप में हमारे दफ्तर में आइए""साथ में एक अर्जी भी हो कि हम सभ्य नागरिक यह जीवहिंसा नहीं होने देंगे । जो कुछ हो रहा है, हमारे 'बापू' के अहिंसाधर्म के सर्वथा प्रतिकूल हो रहा है""इसके अलावा, आप अपने अखबारों में खबरें छपवाइए कि इस आन्दोलन के कारण, जनता में भयंकर असंतोष बढ़ रहा है और शीघ्र ही एक अहिंसक मुनिजी 'आमरण अनशन' करने जा रहे हैं ।""आगे आप स्वयं समझदार हैं । आप अपना काम कीजिए, हम रास्ता बनाते रहेंगे ।""

"लेकिन, हमारे विभाग ने मक्खी और हैजे की समाप्ति के लिए हजारों रुपए की जो दवाइयाँ खरीदी हैं, उनका क्या होगा ?"—मंत्रीजी ने कठिनाई पेश की ।

लेकिन डॉक्टर चमड़ीधर ने तत्काल निदान खोज लिया—

"हुजूर, जिस तरह हम सरकारी दवाइयाँ, चुपके-चुपके आज तक खरीदते आ रहे हैं, उसी तरह ये दवाइयाँ भी आपसे खरीद लेंगे । नगर काँग्रेस के नागरमल की दवाइयों की दूकान पर सारा माल पहुँचा दीजिए""आगे हम देख लेंगे ।"

"अच्छा तो हुजूर, अब इजाजत दीजिए"—हकीम साहब उठ खड़े हुए।

इन लोगों के जाते ही, मंत्री महोदय ने लपक कर, मकड़ी देवी को गले लगा लिया—"मैं तुम्हारी सूझबूझ का कायल हूँ। सच, मकड़ी, देश को तुम-जैसी महान् मकड़ी नारियों की बड़ी आवश्यकता है। मुझे स्मरण है, एक बार बापूजी ने कहा था—'नारी विश्व की विराट शक्ति और अहिंसा की प्रतिमा है।' मैं, आज तुममें उसी विराट्-शक्ति के दर्शन कर रहा हूँ।" धीरे-धीरे, मंत्रीजी का हाथ उस विराट नारी की देह को सहलाने लगा!

सूरज उगते न उगते, दीन दरिद्र इस देश के लाखों रुपयों से चलाया गया महान् 'मक्खीमार-आन्दोलन' ठप्प हो गया!

उस रात नई दिल्ली में थके-हारे, वृद्ध, श्वेतकेशी प्रधानमंत्री ने यू. एन. ओ. के स्वास्थ्य-विभाग के दरबार में, देश के सुस्वास्थ्य और आरोग्य के हेतु, कर्ज के लिए एक और अर्जी लिखी!

• •

१३ सुनन्दा का साया

उसने फ़ोन रख दिया। कमरे में इधर-उधर देखा। कुछ पढ़ कर समय काटने के लिए बुक-शेल्फ़ पर दृष्टि डाली। 'फूलो का कुर्ता' पुस्तक यों ही हाथ में आ गयी, जैसे राह चलते, सड़क पर चौअन्नी मिल जाए ।

फिर वह बरामदे में आया, और ईज़ी-चेयर पर बैठ कर प्रतीक्षा करने लगा ज्ञान की, जिसे उसने अभी फ़ोन किया था।

पुस्तक जिस प्रकार हाथ में आयी थी, उसी प्रकार खुल भी गयी। कहानी के वातावरण में उसका मन-पंछी उड़ने लगा।

लेकिन एक-एक पंक्ति पर अनेक-अनेक विचार विघ्न डालते हैं; एक-एक शब्द जैसे अनेक परिस्थितियाँ जगाता है। एक स्पर्श कई तरंगों को मुखरित कर देता है....

कहानी चलती रही, विचार बहते रहे....तो क्या वह सुनन्दा को छोड़ देगा? कौन कह सकता था, यह सुन्नी ऐसी निकलेगी! चेहरे पर जितनी सादगी है, मन में उतना ही विलास भरा है! ओह......

कार के आने की आहट मिली। वह सीढ़ियों से नीचे उतरा, और स्वागत किया, "आओ ज्ञान, तुम्हें कष्ट तो दिया, पर माफ़ी नहीं माँगूँगा।"

उसने एक नज़र-भर ज्ञान को देख लिया : कितना सौम्य, स्वस्थ और सुन्दर! स्त्रियों में उसके लिए होड़ हो, तो क्या आश्चर्य! ....लेकिन, सुनन्दा?

उसके मुँह से निकल गया, "लेकिन, सुनन्दा ?"

"सुनन्दा के बारे में तुमसे कुछ पूछना चाहता था।"

"पूछो।" ज्ञान अपने स्थान पर खड़ा रहा। न इसने कहा, बैठो; न उसने कहा, बैठूँगा।

दोनों में दूरी बनी रही, बावजूद मित्रता के। पहले दोनों में मित्रता थी। दो के बीच एक ही चीज़ थी। अब तीसरी चीज़ वहाँ प्रविष्ट हो गयी थी—औरत! दो व्यक्तियों के बीच एक औरत! दो युवकों का अहं, और एक तरुणी का प्यार!... कमशकम थी।

"ज्ञान, मुझे बतलाओ, सुनन्दा कैसे भटक गयी? वह मेरी ब्याहता है।...."

ज्ञान ने उसे कनखियों से देखा—बाल बिखरे हुए, दाढ़ी बढ़ी हुई, कपड़े बेतरतीब। धोती पर बुश-शर्ट पहने हुए, और दम्भ इस बात का कि सुनन्दा से मेरा ब्याह हुआ है! कोरे ब्याह से कोई किसी की स्त्री हो जाती है! विवाह का बंधन क्या नारी के नारीत्व से भी बड़ा है! उसकी इच्छा...आकांक्षा...कामना...सपने? क्या सब ब्याह के उपरान्त वह समेट लेगी? समेटना चाहे भी तो, आशाओं के जिस जाल को वर्षों फैलाया, एक दिन में, सुहाग की एक रात में सिमटा पाएगी?

ज्ञान बोला, "देखो, हम मित्र हैं, और मित्र बने रहें। यह तुम न चाहो, तुम्हारी मर्जी; मैं तो चाहता हूं। इसलिए, तुम्हारा सवाल इतना वज़नदार है कि दोस्ती के शीशे को वह तड़का देगा।"

"भले।"

"लेकिन दोस्त, मैं क्या जानूँ, सुनन्दा ने क्या देखा?"

"कुछ देखा है, जिसे तुम जानते हो। ज़रा मुझे भी बताओ वह राज़; मैं भी देखूँ, किसी तरुणी को कैसे फँसाया जा सकता है?"

"रुको, तुम जिस पर विवाह का दावा करते हो, उसके लिए 'फँसाना'-जैसे शब्द का प्रयोग करते हो? यह नारी का अपमान है। यह संस्कारिता नहीं, और कुछ है...."

"संस्कारिता इसमें है कि दूसरे की बहू-बेटी को अपने घर में डाल कर, उसकी कमाई पर गुलछर्रे उड़ाएँ ?..."

ज्ञान ज़ोर से चिल्लाया, "मैं कहता हूँ, चुप रहो।" उसने मेज़ पर रखा पेपरवेट उठा लिया, कहा, "तुम कैसे कह सकते हो कि सुनन्दा से मेरी पहचान मर्यादा से बाहर है ?"

"नहीं-नहीं, मैं यह नहीं कहता। तुम रोष में आ गये। अच्छा, बैठो, कुछ बात हो। मैंने तुम्हें बुलाया है, तो तुम्हारा अपमान तो नहीं करूँगा।"

"जब तुम अपनी पत्नी का अपमान कर सकते हो, तो मेरे मानापमान का तुम्हें क्या ग़म !"

"खैर, सुनो। इस बार सुनन्दा जब पहाड़ से लौटी, तो मैंने उसे बहुत बदला हुआ पाया।"

"किस दृष्टि से ?"

"वह काफ़ी बन-ठन कर रहने लगी है।"

"यह तो अच्छी बात है। श्रृंगार में हमारी नारी विश्व में अग्रणी है।"

"लेकिन, वह बार-बार तुम्हारा उल्लेख करती रही : ज्ञान बाबू ऐसे हैं, ज्ञान बाबू वैसे हैं ! यह खाते हैं, वह पीते हैं ! यों बैठते हैं, यों चलते हैं !"

"इसमें बुराई कहाँ ?"

"ठहरो भी, तुम्हारा स्वभाव तो सुनन्दा-जैसा ही उतावला है। तभी न वह तुम्हारी ओर..."

ज्ञान ने पेपरवेट वाला हाथ सिर से ऊपर तक उठा लिया।

यह बोला, "दिन-भर तुम्हारा बखान करती है।..."

'फूलों का कुर्ता' की नन्ही हिरोइन ने जिस प्रकार अपना फ्रॉक उठा कर आँखें छिपा ली थीं, उस प्रकार इसने चद्दर सिर पर खींची, पैर उघाड़े हो गये।

सड़क पर कार खामोश खड़ी थी, पर दरवाज़ा खुला था।

पुस्तक बंद पड़ी थी, पर कहानी चल रही थी।

हवा का झोंका एक बास ले आया, जिसे छू कर इसका मन भीगी डाल की तरह उदास और भारी हो गया। वही महक! ज्ञान के जाते ही, मैं इस पौधे को जड़ से उखाड़ कर जला दूँगा। मल्लिका के गजरे बहुत पसन्द थे न सुन्नी को!...

"हर वक्त सुन्नी तुम्हारा ज़िक्र करती।"

"हो सकता है; मैं फ़िल्म अभिनेता हूँ। हमारी चर्चा घरों में यों भी चलती है। ज़माना फ़िल्म, अख़बार और विज्ञान का है।"

"और औरतों का भी है।"

"......"

सुनन्दा नींद में भी जब तुम्हारे बारे में बड़-बड़ाने लगी, मेरा मन खटका।"

"अरे, दिन में जो बात हम पर छायी रहती है, अक्सर वही सपनों में आती है।"

"सपने हमें भी आते हैं, पर लड़कियों के नहीं।"

"यों कहो, लड़कियाँ तुम्हारे सपनों में भी नहीं आतीं!"

"एक ही बात है।"

"बात को उलट कर देखोगे, तो एक नहीं, दो बन जाएँगी।"

"सुनन्दा का यह अत्याचार मैं सह न सका। मैंने उसे..."

"ज़हर दे दिया?"

"...काश, दे पाता!"

"तुम अस्वस्थ हो। कहीं चार-छह महीने विश्राम करो।"

"अकेला?"

"किसी को ले जाओ।"

"जब सुनन्दा-जैसी स्त्री ही आपे में न रही, तो औरों का क्या? इतने बरसों के गृहस्थ-जीवन पर उसने पानी फेर दिया!"

इसने लम्बी साँस ली।

उसने लंबा कश खींचा।

धुएँ के गुब्बार बन कर मिटने लगे; मिट कर बनने लगे। पुस्तक फ़र्श पर औंधी पड़ी थी। कहानी चल रही थी। विचार दोनों के मन में थे। बात दोनों के दिल में थी। द्वन्द्व दोनों को उलझाये था।

"भाई ज्ञान, तुम मुझे कोई संकेत दो। आखिर स्त्री को कैसे आकर्षित किया जा सकता है? कैसे वश में रखा जा सकता है! तुम तो इस फ़न के उस्ताद हो।"

"यह फ़न नहीं, पेशा नहीं, धर्म है। महापुण्य है, सत्कर्म है। सुनन्दा उच्चवर्गीय लोगों में पली है। सफ़ाई से रहती है, और सलीके से बात करती है।"

"सबके लिए नहीं, केवल तुम्हारे लिए।"

"और एक तुम्हारी पत्नी है, ज्ञान। माफ़ करना, विवाहिता नहीं, पर कितनी पतिव्रता है! हरदम 'ज्ञान-ज्ञान-ज्ञान!' वह आदर्श महिला है।"

"तुम बहुत भोले हो, मित्र!"

"और गँवार भी हूँ।"

"कम-से-कम मैं तो ऐसा नहीं समझता।"

"सुन्नी तो समझती है। तुम्हारी पत्नी भी यही कहती है।"

"मेरी पत्नी! नहीं, अर्ची ऐसा सोच भी नहीं सकती।"

"अर्चना देवी मेरी पत्नी से बात करती थीं। मैंने सुना, दोनों मेरी खिल्ली उड़ा रही थीं।"

"तुम्हारा भ्रम है।"

"मगर, दोनों तुम्हारी प्रशंसा कर रही थीं।"

"इसका अर्थ यह नहीं कि तुम्हारी अवमानना कर रही थीं। तुम स्त्रियों के बारे में 'प्रेज्युडिस्ड' हो।"

"स्त्रियाँ मेरे बारे में 'प्रेज्युडिस्ड' हैं।"

"हो सकता है; अच्छा, अब मुझे इजाजत दो।" ज्ञान ने घड़ी देखी, बोला, "ओह, समय हो गया। इसी ट्रेन से जा रहा हूं। आउटडोर शूटिंग है, 'रमते राम' फ़िल्म का।"

"जाओ ।"

"नमस्ते ।,'

"...ज़रा सुनो ।"

वह रुक गया, सुना : "सुन्नी क्या वहाँ आने वाली है ?"

ज्ञान ने घृणापूर्वक घूर कर देखा, बोला, "शक की दवा लुक़मान के पास भी नहीं ।" और उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी ।

'फूलों का कुर्ता' इसकी आँखों पर पर्दा बन पड़ा था । चद्दर ने सिर ढँक लिया था, पर नंगे पैर ढँकाई का मज़ाक़ उड़ा रहे थे ।

गाड़ी धूल की लकीर छोड़ गयी थी । पुस्तक अब औंधी थी । जिल्द का गत्ता इतना भारी था कि हवा पत्ते नहीं उड़ा सकती थी । ये हरेक चीज़ को एहतियात से रखने के आदी हैं । मज़ाल है, कोई वस्तु कहीं से बिगड़ जाए, कहीं उस पर धब्बा लग जाए, कोई उसका मुफ्त में उपयोग कर ले । हो नहीं सकता ! इतना फूँक कर क़दम रखते हैं कि साँस में दम नहीं रहा ! राह को ज्यादा बुहारने से उसके नुकीले पत्थर निकल आते हैं, और वे पैर-पैर को अधिक सालते हैं, और चुनौती देते हैं ।

कहानी अब भी चल रही है, क्योंकि हवा में गाड़ी के पेट्रोल की गंध है; क्योंकि पवन में मल्लिका महक रही है, क्योंकि कमरे में सुनन्दा का साया है । भीतर जाते इन्हें भय लगता है ।...

घन्-घन् घर्र-घर्र...घन्न्न, घन्-घन् टेलीफ़ोन ने बुलाया । ये दौड़े । उसमें बोले : 'हलो, अर्ची ...अर्चना देवी ! जी, नमस्ते । कैसी हैं ? ही....ही....ही....मेरा क्या...जी...ही-ही-ही...अच्छा हूँ । हाँ, अभी चले गये । ज्ञान बाबू चले गये ।...ही....ही...चली आओ, भोला गेट खुला रखेगा । ज़रा धकेल देना, खुल जाएगा । तुम्हारे लिए हार ले आया हूँ । ही...ही...देखते ही...खुस हो जाओगी ।...मेरी लाल परी...! आओ अब देर न लगाओ । अच्छा...ही....ही...ही ।'

गर्द की लकीर मिट गयी । मल्लिका मुरझा कर, चू पड़ी । गत्ता इतना भारी है कि पत्ता हिल नहीं सकता ।

अर्चना आयी है, पर रात की मजदूरन हड़ताल किये बैठी है ।

१४ एक प्राण : दो देही

मेरे आलोक ! तुम जुग-जुग जीओ, बेटा ! आज तुम्हारी इस वर्षगांठ पर मुझे उर्दू शायर का यह शेर याद आया है—

'तुम सलामत रहो हज़ार बरस,
हर बरस के दिन हों पचास हज़ार !'

लेकिन शायर-शायर था। मां के अन्तर के अंतराल में क्या-क्या छिपा है, वह नहीं जानता था, वरना पचास-हज़ार ही क्यों लिखता ?—लिख न देता—'हर बरस के दिन हों हज़ार-हज़ार।'

और तुम जन्म-दिवस पर मेरे आशीष की प्रतीक्षा करके रह जाओगे। और मेरा पत्र तुम्हें एक दिन देरी से मिलेगा। मैं जान बूझ कर देरी कर रही हूँ, ताकि तुम्हारा मुख उदास न हो और मन म्लान न हो !

तुम्हें कलंकिनी कुंती की कथा याद है ?

मां मरियम की मर्म-व्यथा जानते हो ? सीता को जब वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ दिया गया, वह प्रसंग तुम्हें स्मरण है, मैंने स्वयं पास बैठ कर पढ़ाया था ? कहने का आशय है, पुरुष सदा से नारी के प्रति निष्ठुर होता आया है। चाहे वह सीता का राम हो, राधा का श्याम हो ! प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को 'मर्यादा लक्ष्मी' के रूप में देखना चाहता है और यदि कोई प्रताड़ित सीता या अंजना इस पद पर प्रतिष्ठित हो भी जाती है तो उसे वनवासिनी बनना पड़ता है।.......

मैं यह सोच नहीं सकती कि पुरुष जिसे जीवनसंगिनी बनाने को लालायित रहता है, उसे छोड़ते समय सकुचाता क्यों नहीं ?

इतिहास का पर्दा उठाकर जरा देखो, बेटा ! पुरुष को किसी काल, पल में लाज न आई ! अपने अहं और स्वार्थ के दो बिन्दुओं के बीच वह दौड़ता रहा है । वह पत्नी से त्याग-विराग, देह-भोग, रस-रूप, समर्पण-सभी कुछ चाहता है, परन्तु, 'क्या देता बदले में है ?'—यह वह कभी नहीं सोचता । यह इतना बेखबर और अकरुण है कि नारी के त्याग, अनुदान और कष्ट-सहन को सहज ही भुला देता है । बात प्रसंग के बाहर बढ़ती जा रही है, इसलिए मैं इस पुरुष से इतना ही पूछना चाहती हूँ कि क्या वह सदैव नारी के आत्मार्पण का ही 'देवता'-भोक्ता बना रहेगा ? यह परम्परा और शृंखला कब टूटेगी ? नारी; पुरुष के सभी सम्पर्कों और संस्पर्शों के बाद भी, स्वतन्त्र रह सके, वह स्थिति क्या नहीं ही आएगी ? और बावजूद सारे उपयोग, उपभोग और प्रयोग के वह उसकी मजबूरी का फायदा इसी प्रकार उठाता रहेगा ? प्रजनन, जो नारी का अमर अहिवात और सबसे बड़ा जीवन-यज्ञ है, उसमें वह अकेली ही हुताशन बनती रहेगी ! गर्भधारण जो विधाता की सृष्टि में सर्वाधिक 'मंगलम् एवं शिवम्' कार्य है, क्या वही नारी की पारिवारिक और सामाजिक दासता की कुटिल शृंखला बन जाएगा ?

तुम आश्चर्य करोगे, आज मां को क्या हो गया है ? ऐसा विषय ले बैठी है, जो सन्तान और जननी के बीच मर्यादा की भित्ति है । तो बेटा, एक रात यह सर्वाधिक 'मंगलम् एवं शिवम्' आत्मसमर्पण ही मेरे दुर्भाग्य का संवाहक बना था । पर इसे सौभाग्य मैंने कहा, क्योंकि मैं कुल और वंश की नजरों में तेरी तरह दुराग्रही और नटखट रही हूँ । क्योंकि इस सौभाग्य की छाया में मैं तुझे पाकर अपने दुर्भाग्य को भूल गई ! त्रैलोक्य की किसी भी नारी के लिए इससे बड़ा पुण्य-पर्व और क्या होगा कि उसके पवित्र पयोधरों का पय पान कर कोई शिशु 'जीवन'-दान पाए ! बेटा, जीवन-रक्षा से अधिक श्रेयस्कर, मुक्तिदायी और क्या हो सकता है ?

और तुम कुंती की कथा जानते हो ?

तुम्हारे जन्म से पहले ही तुम्हारे पिता—जो आज भी भाषा के

जाने-माने महाकवि हैं, मुझे अकेली छोड़ गए थे अपनी मधुप-वृत्ति के कारण, फिर बेटा, यह सोच कर कि पुरुष अपना काम देखे, अपने पथ जाए, मैंने कुछ न कहा।

जब तुम्हारा जन्म हुआ तो मैं कुल-परिवार, जाति-समाज और नगर-डगर से निकाल दी गई । चारों ओर से तिरस्कृत, अपमानित, लांछित हुई।

—तब मुझे कुंती की याद आई थी। तुम्हें याद है न बेटा! याद तो होगी ही, क्योंकि तुम बड़े ही कुशाग्रबुद्धि हो और तभी न, इस बालवय में विलायत से बैरिस्टर होकर लौट रहे हो आज !

तुम अपने देश के, समाज और सरकार के, न्याय और कानून को जानते हो । अर्थ, नीति और धर्म ; शासन, अवस्था और व्यवस्था सभी मेरे खिलाफ ! ये दोनों, और मैं अकेली इन दो पाटों के बीच कब तक पिसती रहूँ ? यदि इस यंत्रणा के अणुतम अंश को भी तुम महसूस कर लोगे तो मेरी इस मौत पर तुम्हें दुख न होगा । मेरी इस आत्म.... हाँ, आत्महत्या पर तुम्हें आश्चर्य न होगा। दुख तो तुम्हें होगा ही क्योंकि तुम मेरे बेटे हो और मैं तुम्हारी मां हूँ। और मां को बेटे का अभाव और बेटे को मां का अभाव युगान्तरों से रुलाता आ रहा है ! वैसे, पुरुष कभी नारी के लिए नहीं रोया !

इक्कीस बरस तक मैं इस आत्महत्या के प्रलोभन को परे रखती रही। आज अपने सभी लाछनों के साथ मरूँगी । मेरे साथ उन सभी लांछनों और कालिमाओं का भी अन्त हो जाएगा।

दुनिया मुझे बेग़ैरत समझती रही और मेरे मन में तड़प रही कि क्योंकर अपनी ग़ैरत इसके सामने साबित कर दूँ। बार-बार मन्सूबे बाँधती कि कल नहीं तो आज की रात अवश्य आंचल से पत्थर बांध कर डूब मरूंगी, पर, जब दूध पीते-पीते, तुम अपना दूध से धुला मुख ऊपर उठा कर मेरी ओर पलक उठाते तो मेरा मन विश्वम्भर का गला घोंट देने को बेचैन हो उठता ! तब आत्महत्या का प्रलोभन लुभाकर भी मुझे न छल पाता, लेकिन, तुम वकील बन कर यह तो समझने योग्य बन गए

होगे कि भारतीय कुमारी मां के लिए 'आत्महत्या' कितनी विशाल ढाल है ?

महाकवि से मैंने अपने मन का भेद कहा कि मैं दिनों से हूं..... ! सुनकर जैसे उनकी चपलता भंग हो गई ! खोए-खोए से मेरी ओर देखते रह गए। दूसरी रात मुझे अकेली छोड़ कर दक्षिण की ओर चले गए। बेटा, तुम दक्षिण की ओर कभी न जाना। उस भूमि पर पैर न धरना, जहां पत्नी से पलायन करने वाले जीवित प्रेत बसते हों !

मैंने तुलसी के सामने अपना दुखड़ा रोया। वह भी रोने लगी और मेरे आंसू पोंछती मुझे मरने से बचाने लगी। आठ महीने तक उसने मुझे अपने घर में फूल-मोती की तरह सहेजकर रखा। लेकिन जब पास-पड़ोस के लोगों में फुसफुसाहट होने लगी; और अपने पाप पर मौन रह जाने वाले, मेरे तथाकथित 'पाप' पर वाचाल और मुखर बन बैठे तो मैं ही तुलसी का घर छोड़ कर चली आई, और जब, तुम्हारा पिता कौन है ? इस समस्या ने गांव भर के बेकारों को काम दिया और वृद्धाओं को सुमरनी छोड़ कर जीभ चलाने का अवसर दिया तो मैं चुप-चाप महाकवि के डेरे पर जाकर पड़ रही। मैंने सोचा, चाहे कुछ भी हो, मैं यह न सहूँगी कि मेरा लाल बिना बाप का रहे ! लोग उसे चिढ़ाएँ जिस तरह कर्ण को चिढ़ाते थे !

तुम्हें कुन्ती और कर्ण की कथा याद है न बेटा।

तुम्हारे जन्म पर महाकवि ने मुझे एक मनीआर्डर और एक पाती भेजी थी। पत्र पर प्रेषक का पता तो न था पर मैं जान गई कि मुझ अभागिन को लिखने वाला, दूसरा और कौन है ? पर पत्र जो पढ़ा तो मेरा खून खौल उठा, और नख से शिख तक वह्नि सुलग उठी ! क्या आदमी का बेटा इतना क्षुद्र हो सकता है ? क्या मनुष्य का पतन इतना गहरा है ? बेटा, तुम मध्यमवर्ग और उच्च श्रेणी के इन कायरों का कभी भरोसा न करना। ऐन शिकार के समय तुम्हें सिंह के सम्मुख निरस्त्र, अकेला छोड़ कर अपनी बन्दूक मोड़ कर, ये भाग जायेंगे। आसन तुम बिछाओगे और विश्राम ये करेंगे !.........लहरें तुमसे गिन-

बायेंगे और मछलियाँ ये खायेंगे।......कैसे लिखूँ--महाकवि का सुझाव था, मैं तुम्हें कहीं अनाथालय में छोड़ आऊं, क्या पुरुष और वह भी महाकवि, यह समझने से मजबूर है कि मां अपने शिशु से दूर नहीं हो सकती। बेटा, तुम्हारे अंग्रेजी कानून में देशी हत्यारों के लिए कोई दण्ड नहीं? माँ से जो शिशु छीनता है, शिशु से जो माँ को छीनता है, ऐसे लोगों के लिए भी तो कुछ लिखा होगा? तुम विश्वास करोगे, यदि मैं महाकवि से कहती--'तुम्हीं इस कुलच्छन का गला दबा दो।' तो अवश्य यह हो जाता। बेटा, मैं अधिक पढ़ी-लिखी नहीं, पर मैंने देखा है कि आज का कवि जीवन से बहुत दूर पड़ गया है। वह अपने से ही अपरिचित है। तभी, उलझा-उलझा है, भटका-भटका है।

तुम्हें कुंती की कथा याद है न बेटा; जरूर याद होगी! मैंने ही तो तुम्हें सुनाई थी, 'तुलसी जी की क्यारी' के पास तब तुम नन्हें-नन्हें थे और लाल पतंग के लिए मचलते थे।

जब तुम जन्मे तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मैं तुम्हें पिटारे में बन्द कर, नदी में बहा दूँ!

बेटा! कवि ने मुझसे छल किया! मैं जानती न थी कि किसी तरुण का रजनीसंग कुमारी के लिए वर्जित फल है। कवि ने मुझे कुछ न बताया! सुषुप्ति के समय, मैं आनन्द के स्वर्ग में थी। लेकिन, जब जगी तो शोक के पाताल में थी!

तुम्हें कुंती की कथा याद है न बेटा! जरूर याद होगी! कुंती कायर थी। वह मर न सकी, और बेटे को मार डाला! मार ही डाला-उसे बन्द करके पेटी में, बहा दिया! माँ अपने बेटे को बहा देगी तो, अम्बर चाँद-सूरज को बहा देगा। जमीन फसल को मिटा देगी। और वातावरण हवा को हवा कर देगा! आदमी कैसे जीएगा? धरित्री न रह जाएगी तो, कौन रह जाएगा?

तुम्हें छोड़ कर, मैं कुंती की तरह कवि की परिणीता बन सकती थी। तब, पत्रों में हमारे चित्र प्रकाशित होते! हमारी जयंतियाँ मनाई जातीं! पाठ्य पुस्तकों में हमारे जीवन-चरित्र छपते। नगर-नगर अभि-

नंदन पत्र देते और संस्था-संस्था अभिनन्दनग्रंथ भेंट करती ! और भी बहुत कुछ होता !

लेकिन मन के चोर का क्या होता ? मन के रहस्य का क्या होता ? दुनिया मुँह मूंद ले, मन तो अबोला नहीं रहता। यदि मनुष्य का मन चुप रहता : अचल, अगति, अवाक् रहता तो आज तक पाप का प्रकाशन, प्रक्षालन और प्रायश्चित नहीं होता, और समाज का तथाकथित 'पुण्य' सूदखोर के समान, इतना मोटा–ताजा और ऊंचा–पूरा न हो पाता।

और तुमने कभी सोचा है बेटा, पुण्य के अशोक-वृक्ष की जड़ों में कितनी अबलाओं के आँसू हैं ? जीवन हैं ? कितने दासों का लहू है और कितनी दासियों की अस्मतें हैं ! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हिंसा का विष पीकर अहिंसा जीवित रहती है । मैंने तो कई बार यह देखा है । उदाहरण लो—जैसे निरामिष रोगी सामिष दवाइयाँ गटक कर स्वस्थ होता है। हमारे समाज की इस व्यवस्था में, इस दशा और क्षेत्र में यह स्मरण रखना बेटा, जितना जो प्रकट गोचर है, पुण्य प्रतिफल, सफलता-सिद्धियाँ, कीर्ति-वैभव आदि नाना नामरूपों में तुम्हें दिख रहा है, उस सब, सर्वान्त के मूल में—आगे, पीछे, ऊपर या नीचे 'पाप' का पहरा है। शोषण है, छलकौशल, धोखा, षड्यंत्र है ! बेटा, इस व्यवस्था में कोरा 'सत्य' कभी जीवित नहीं रह सकता। इस अवस्था को, अर्थ और नीति के दार्शनिक चाहे जो नाम दें, इसमें आमूल परिवर्तन लाना है !

जिस समय मैं घर और गाँव से निकाल दी गई थी, तुम आठ महीने के थे। दो-एक दाँत आ गए थे ।···भूखी रहने के कारण मेरा दूध सूख चला था। मैंने वन-पथ से हटकर, पीपल की छाया में पल्लवों पर तुम्हें सुलाया और सोचा कि इस जीवन से छुटकारा पाऊं। अपनी साड़ी को बंटकर रस्सी बनाई और पीपल की शाखा पर फन्दा डाल गले में बाँध लिया। फिर पैरों के नीचे शिला को धकेलने जा रही थी कि मन में आया तम्हें एक बार जी भर कर देख लूँ, एक बार और जी

भर कर चूम लूं फिर जाना तो है ही !···तुम्हारे पास आई और चूम-कर मुँह उठाया तो देखा—तुम किलकारी भर कर हँस रहे हो ! मैं निरस्त्र, अवश, अबल हो गई ! पहले तो सोचा कि एक से दूसरे छोर तक, दुनिया में आग लगा दूँ, पर आग लगाना माताओं का काम नहीं है, कुमारियों का काम है। यह सोच कर घूंट में जहर पीकर रह गई ! सोचा—तुम्हें भूख लगी तो दूध कौन पिलाएगा ?

उस रात मैं पड़ौस के गाँव गई। जमींदार की लुब्ध दृष्टि मुझ पर पड़ी······फिर···फिर····। नाराज न हो बेटा ! क्या तुम्हारा न्याय, कानून और बुद्धि-कौशल सदैव अपराधियों के विरुद्ध, विपक्ष में ही सोचेगा ? निर्णायक के आसन पर ही बैठा रहेगा ? अपराधी की स्थिति में आकर न स्वयं देखेगा, न सुनेगा !···तुम्हें तो कुंती की कथा याद है !····

और तुम भी कहोगे मुझे—'पथ-भ्रष्टा' ! नहीं, नहीं, नहीं ! बेटा नहीं ! तुम्हारा कानून ग़लत है तुम्हारा ईमान ग़लत है। तुम्हारा न्याय ग़लत है। कहीं से अपूर्ण है।····तुम भी मुझे भ्रष्टा ही कहोगे। तुम्हारे कानून की पोथी में दूसरा शब्द पर्याप्त नहीं ? क्या तुम भी 'पहला-पत्थर' मारने की पवित्रता धारण किये हो ?···हाँ···हाँ, पथभ्रष्ट हूँ, इसलिए कि जिस समाज में रहती हूं उसकी दृष्टि में यही सही है। इससे तो आत्म-हत्या कर रही हूं, मर रही हूं और तन से मर रही हूं, मन से नहीं। मेरा शरीर मरने के पक्ष में हैं। आत्मा जीवित रहने को ललक रही है। दुनिया ने मेरी देह को देखा, मैं उसे वही दिये जा रही हूं। उसकी चीज थी, उसने इसका मनमाना उपयोग किया !

और अन्त में, तुमसे एक प्रार्थना है सपूत ! जब तुम छोटे थे, हमारे पड़ौस में एक पंडित जी अपनी पत्नी को बड़ी बेरहमी से पींटा करते थे। रोती-सिसकती वह बेचारी आंगन में दौड़ आती। लेकिन, वहां भी छुटकारा कहां था ? लात, घूँसे और गाली ! तुम देख-देख. कर, कांपते थे बेटा ! सहम कर मेरी गोद में छिप जाते ! तुम्हारा मन पुष्प-पराग से भी कोमल है, मेरे लाल ! फिर जब वह पापी पंडित चला

जाता, तुम कहा करते—"मां, मैं तुमसे ही शादी करूँगा। तुम्हें कभी न पीटूँगा! दूसरा तुमसे ब्याह करेगा तो तुम्हें मारेगा, पीटेगा, रुलाएगा! मैं कुछ न कहूँगा!" यह तुम्हारे शब्द हैं बेटा, मुझे अच्छी तरह याद हैं। लजाओ नहीं। ब्याह, जल्द से जल्द करना। और मेरी बहू को कभी, कुछ न कहना। उसकी ओर टेढ़ी भौंह तक न उठाना! उसका मन न दुखाना। नारी तो जन्मान्तरों से उत्पीड़िता है। शोषिता है। तुम भी उसके शोषकों की श्रेणी में बैठोगे तो मेरी आत्मा कभी चैन न पाएगी!... और...अब, बस, मेरे दुलारे, बिदा दो! पड़ौसिन जानकी को जो चीज सौंप रही हूँ, तुम्हें समय पर मिल जाएगी, बहू को 'मुँह-दिखाई' में दे देना!

अच्छा, बिदा बेटा, जन्म-जन्मान्तरों तक तुम मेरे लाल रहोगे, और मैं तुम्हारी मां! केवल तुम्हारी कलंकिनी मां! तुम्हें कुंती की कथा याद है बेटा? जरूर याद होगी!.........

• •

१५ और लौ बुझ गई

बड़ी हवेली के बड़े बरामदे में, उसने सामान रख दिया। चौकीदार चिरागअली के लिए इधर-उधर देखा, पर वह अपनी चौकी-पर नजर नहीं आया। बड़े दरवाजे की कुंडी खोलकर, उसने धक्का दिया। भारी आवाज के साथ, किवाड़ पीछे हट गये।

कमरे में, चारों ओर, पुराना फर्नीचर सजा हुआ था। सिर्फ, उस पर धूल जम गयी थी और बरसों उस धूल का परिवार बढ़ता गया था, और परत पर परत चढ़ती गयी थी। दीदी की सौतेली मां नींद से कहीं जग न जाए, इस भय की सावधानी लेकर, वह दबे कदम दूसरे कमरे में गया, और उसे रोशन करने के लिए, खिड़की खोल दी। ऊपर, खुले वेंटिलेटर से, काले कबूतर का जोड़ा फर्र से बाहर उड़ गया!

दीदी की मेज पर किताबें सजी थीं। एक खुली किताब पर बुक-मार्क रखा था, और मेजपोश पर धूल की तहें छा गयी थीं। उसे आश्चर्य हुआ, भला, दीदी ने इस धूल और इन तहों को क्योंकर बर्दाश्त कर लिया है! जरा पूछें; पूछूं उनसे—

'दीदी', उसने हौले पुकारा। धीमे इतना कि दीदी की सौतेली मां, कहीं जग न जाए!

लेकिन, पुकार—रूखी लटों की तरह, लौट आयी। और उसने इस बार साहसपूर्वक जोर से पुकारा—'दीदी, दीदी, मैं आ गया हूँ!' उसने कदम बढ़ाये। तुलसी-क्यारी के पास भी दीदी नहीं! शायद, माँ ने उन्हें फूल चुनने भेजा है, शायद वह नल पर ढेरों कपड़े धो रही हैं,

शायद वह घर भरके लिए खाना बना रही हैं, शायद उनकी सौतेली मां ने उन्हें पीटा है, और वे भूखी-प्यासी, ईंधन की काली कोठरी में, घुटनों पर सिर दिये, चुपचाप सिसक रही हैं !

नानी-मां के 'रामचरित मानस' पर सुमरनी रखी है, और सफेद फूल सूखकर स्याह पड़ गये हैं। आसन सूना है। कैसी हैं नानी, रामचरित पर, जो उन्हें प्राण से भी प्यारा है, धूल जम रही, और उन्हें ध्यान ही नहीं है !

अस्तबल के कोने में घास का ढेर देखा। इसी ढेर में छिप कर छोटी जानकी को चूम लिया था।...सचमुच ? हां ! उसने पीठ पर हाथ फिराया, मां ने तब बहुत पीटा था। दर्द अब भी बाकी है।

'दीदी, तुम कहां हो ?'—बगीचे में जाकर उसने पूरे कंठ से पुकारा—लाहौर, बदल कर, पाकिस्तान बन गया, पर हमारा घरबार तो नहीं बदला दीदी ? हमारा मन तो नहीं बदला ! दीदी...दी...दी !' पत्ते चुप हैं और हवा खामोश खड़ी है।

सब-कुछ शान्त, सूना है। सिर्फ कबूतर गुटरू-गूं बोल रहे हैं। कुत्ते का एक पिल्ला पैरों से लिपट गया है।

'अरी जीनत, जरा इधर तो आ ! बड़ी हवेली में कोई परदेशी आया है।'—बगीचे की दीवार के छज्जे से सुरीली आवाज आ रही है। सुरीली आवाज केश गूंथ रही है, और उसकी सुन्दर सहेली, हथेलियों पर चांद रखे, मुसकरा रही है।

वैसे, मुसकराने की कोई बात नहीं है।

'देख री, चंदा कैसा निकल आया है ?'

'तू ही देख, कुंआरी जो है।'

फिर चुहल-चुटकियाँ। फिर हंसी-खिलखिलाहट। और फिर ग़मगीन उदासी का आलम !

लेकिन, गहरी-गहरी सांस लेकर, ऊपरी दालान में खिड़कीके पास वह बैठ गया तो, नीले अम्बर के इस चांद की तरह, जी में धुंधला-धुंधला चैन उभरा !

फिर मन कहीं खो गया। और, अजब एक तसवीर उभरी और विचित्र एक चलचित्र चलने लगा—

नीलमपुर के राजकुमार हैं चंदामामा। सजधज कर दूल्हा बने, उन्होंने किरनों के हार-गहने पहने। मोती, मानिक, और हीरा जड़े उनके आभूषण देख कर, वर्माजी के सरोवर वाली कुमुद खिल उठी। बादलों के सात घोड़ों की बग्घी में बैठ कर, मामा जब चले, तो बिजलियां अपनी मशालें जला कर, आगे-आगे चलने लगीं। तितलियों, परियों, और नींद की रानियों के भेजे डफाली, ढोल बजाने लगे। अब तो शहनाइयां बजने लगीं, गीत गूंजने लगे और 'चंदामामा बने हैं दुल्हा' के शोर से तारों ने धरती के वासियों को जगा दिया। उन्होंने यह दृश्य देखा, तो चकित रह गये। खुली हुई पोथी-से, उनके नेत्र, खुले रह गये! मगर नये चाकलेट-से उनके मीठे मुंह, पके आम की तरह बन्द रहे! वे, कुछ न बोले, और नीलमपुर के राजकुमार की बारात, जोहने लगे। तब चौकीदार चिरागअली, जो रात में भी दिन की तरह जागता है, चुप न रह सका, और उसने कहा—'बच्चो, आओ चिराग जलायें, दीवाली मनायें! क्योंकि सितारों के मामा चन्दा राजा की शादी है, लेकिन, वे तुम्हारे भी मामा हैं। आओ खुशी मनायें।

चिरागअली तो चिरागअली। उसकी बात कौन नहीं मानता? बच्चे एकत्र हुए, और, आंगन में तुलसी-क्यारी के पास शोरगुल मचाने लगे। चन्दामामा बने हैं दुल्हा.........चन्दामामा!..........

इस कोलाहल से, ऊपर दालान में खिड़की के पास लेटे किशोर की नींद उचट गयी।

उसने आंख खोल कर इधर-उधर देखा, तो नर्स ने पूछा—'जल पीएंगे?'

किशोर ने 'ना' के अर्थ में सिर हिला दिया।

नर्स ने खिड़की का जालीदार पर्दा हटा दिया। और अब खिड़की से पूनम की चांदनी पूरी-पूरी नजर आने लगी। किशोर ने सोचा चांदनी ऐसी है, जैसी, चिरागअली के किस्से की महताब परी। पर्दा इसका

रेशमी घूंघट है। और यह दूर-दूर नीलमपुर से आयी है!....विचारों में खोया, वह खिड़कीसे बाहर देखने लगा, जहां उसके हमजोली और छोटे भाई-बहन चिरागअली के चारों ओर खड़े थे।

'चन्दामामा बने हैं दुल्हा, बने हैं दुल्हा'—कपूर सिर को झटक, झूम-झूम कर गा रहा था। चुन्नी तुतला रही थी।.........

यह चपल कोलाहल सुनकर, मौलसिरी का फूल-फूल महक उठा, और उसकी डाल पर बैठा लक्खू बन्दर, जो दिन भर की उछल-कूद से थक कर ऊंघ रहा था, किट्-किट् करता, उतर आया। यह-सब देख कर, कोने में खड़ा हरसिंगार, ताली बजाकर हँसने लगा। उसकी हँसी के फूल झरे, तो नीचे सोया पप्पू टाइगर जाग उठा। उसने अपनी दुम फटकारी, जैसे रॉकेट बाण चला। मुंह उठाकर चारों ओर देखा, जैसे परीक्षाघर में, गणित-के-मास्टर चौकन्ने होकर देखते हैं। दुम हिलाता हुआ पप्पू भी, भीड़ में शामिल हो गया। और अब तो गीत, पुकार, चिल्लाहट और खिलखिलाहट का शोर, आकाश में चढ़ने वाले पतंगकी तरह, बढ़ गया! इससे नानी मां गुस्सा-गुस्सा हो गयीं और मानस की पोथी पर अपनी माला रख कर, लाठी उठा कर आयीं तुलसी-चौरे के पास! लाठी की 'खट्' सुनकर, टाइगर सियार की तरह, झट से दुबक गया!

नन्हीं चुन्नी ने उन्हें आते देखा, तो दीप-संजोती कान्ति-दीदी के पैरों में छिप गयी। और अमल, कमल मोर्चा बनाने लगे, कि नानी दौड़े, तो तुलसी के चारों ओर, गोल-गोल दौड़ते रहें, और उनके हाथ न आयें कभी! सिर्फ, अकेला और अक्खड़ कपूर खड़ा रहा वहीं, जैसे, नीलमपुर जानेवाली गाड़ी का इंजिन खड़ा है। जानकी भी भूल से वहीं खड़ी रह गयी। सच तो यह, कि उसे खबर नहीं थी अपनी। वह तो, हर पल, हर घड़ी, खिलखिलाती रहती है और भले उसे हँसाओ या रुलाओ, कुछ भी करो; वह हमेशा हँसती ही रहेगी! हँसती ही रहेगी, कि बड़ी बादाम-जैसी उसकी आँखों में मोती-मोती भर आएंगे।

सो, दोनों हाथों से पेट पकड़े, वह जोर से खिलखिला रही थी

कि नानी ने पीछे से कान पकड़ा झप्प। और फर्श पर गेंद के गिरते रहने से जैसी आवाज़ होती है न, प्यारी-प्यारी टप्प्-टप्प्, वैसी, जानकी की हँसी एकदम ठप्प् हो गयी ठप्प्! पर नानी को देख कर, वह फिरसे खिलखिलाने लगी, जैसे, परीक्षा के दिनों में कान्ति दीदी की सुनहरी अलार्म, कुनकुना उठती है! मानो, भोर की देवी आरती गा रही है!

और इधर, नानी माँ ने जानकी का कान पकड़ा, उधर वह झुकी, और दोनों हाथों से उनके पैर थाम कर बैठ गयी।

'राम-राम! भान्जी बिटिया, पाप में सानती है मुझे,' कह कर नानी दो कदम पीछे हट गयीं।

'पाप लगा, तो छुड़ाओ उसे।' जानकी बोली।

'कैसे?'

'कलवाली कहानी पूरी सुना दो।' अमल बोला।

'हाँ-हाँ-हाँ' कहते, ताली बजाते सब बालक चिल्लाने लगे।

उनका यह रंग देख कर, तुलसी के चबूतरे पर दीप रख कर, ध्यान धरती कान्ति दीदी भी, मुस्कराए बिना न रह सकीं। दीदी कभी-कभी ही मुस्कराती हैं। जानकी कहती है, 'उन्हें 'ही-ही' हँसते तो किसी ने नहीं देखा। लक्खू बन्दर जो इतना बूढ़ा हो गया है, उसने देखा हो तो देखा हो। चिरागअली चौकीदार ने भी नहीं देखा!'

तभी, दालान में माँ बाहर आयीं और कहने लगीं-'अब, सब शान्त हो जाओ। वे आने वाले हैं।'

माँ को देखकर, अब तक खेल में भूली हुई चुन्नी उनकी ओर चली, और पप्पू टाइगर दुम हिलाने लगा। माँ ने कहा—'आ रे पप्पू, अपना दूध-भात खा ले। चिरागअली...... ...ओ चिराग मियाँ!'

जाने कहाँ से चौकीदार निकल आया, तपाक से झुक कर बोला-'जी हुजूर बहूरानी। खादिम यहीं खड़ा, खुदा-ताला से दुआ माँग रहा था, साहब बाबूकी उमर दराज हो.........दूधकी नहरें बहें.........और बच्चों के फूल इस दौलतखाने के चमन में महकें। हुजूर बंदे को क्या हुक्म होता है?'

'अच्छा, अच्छा, चिराग अली, बैठक के दरवाजे खोल दो। पर्दे उठा दो......फिर लक्खू बन्दर का खाना उसे दो।'

'बहूरानी !' चिराग कह कर चुप हो गया।

माँ ने पूछा--'क्या बात है ?'

'हुजूर ! लक्खू बड़ा शैतान है, हुजूर। क्या अर्ज करूँ। मौलसिरी की नीची डाल पर मेरा कुरता सूख रहा था, उठा ले गया। कहीं छिपा दिया है, या खुदा जाने फाड़ दिया है......कई बार पेड़ की छाया में जाकर, मैंने उसे पुकारा--'आ जा रे भैया, ओ लक्खू ! ले, मैं तेरे लिए चने लाया हूँ---ताजा गरमागरम चने, ये उसी खेत के चने हैं, जिसके चने पिंगल देश की पदमावती ने चखे थे, हुजूर चने क्या हैं, किशमिश हैं, किशमिश नहीं, हुजूर बदाम हैं, नहीं हुजूर.........'

'अच्छा जाओ।' माँ ने मुस्कराकर इतना ही कहा। माँ जब मुस्कराती हैं, तो ऐसा लगता हैं, मानो दूध में मिसरी घुल रही है।

जानकी ने चिराग मियाँ का हाथ पकड़ कर कहा--'चिराग मियाँ, चिराग मियाँ, तुम्हारी लाल दाढ़ी में मेंहदी फूले। किस्सा अफसाना सुनाओ............'

'हाँ सुनाओ।'

'हाँ सुनाओ'--दूसरा बच्चा बोला।

'हाँ सुनाओ।' का शोर फैलता गया, जैसे चम्पा चाची की कढ़ाही में मीठा मालपुआ फैलता जाता है। और इधर-उधर से, आस-पास से, अड़ौस-पड़ौस से नन्हें-मुन्ने, तरुण-किशोर, बाल-बाला बाहर निकल आये--'हां सुनाओ।'

'हां सुनाओ' कहती चौधरियों की चमेली, बेला आई, मांजरेकर का मंगल--'मंगल--मंगल महा दंगल' आया, और कीर्तिकुमार सेनगुप्त की दिव्या आयी। दिव्या आयी, तो कमल उसके पास में जा खड़ा हुआ। दिव्या, कमल की सहपाठिन जो ठहरी। और कमल, दिव्या का, 'कमल-कमल काला-कम्बल' जो ठहरा !

नानी लौट गयी : 'रघुपति-राघव-राजाराम' फिर सुनाई देने

गा। चिरागअली ने लाठी कन्धे पर रखी, और अकड़ कर खड़ा रहा—'आज मुझे बड़ा काम है बच्चो, आज नहीं, कल सुनोगे अफसाना लालपरी उर्फ रात की रानी का जब वह चलती, तो घुंघरू बजते छम् और जब वह रुकती तो घूँघरू रुकते छुम्म। वह रात की रानी थी, और उसकी शादी फारस की खाड़ी के, जहाजों के बादशाह सुल्तान अली उल् अली उल् अली.........

मंगल ने टोक दिया 'अरे चिराग ! 'अली-क्यूब' कह दो एक ही बार, इतना बीजगणित भी नहीं जानते ।'

जानकी रूठ गयी—'जाने दो भाई, किस्सा-विस्सा। मंगल ने मियां को टोक दिया। कहानी की धारा में बाधा का पत्थर फेंका। अब कहानी कैसे बहेगी ?'

'अरे बड़ी आयी सयानी-जानकी। खैर कर अपनी जानकी।'

'देखो, मंगल, मुझे चिढ़ाया तो अच्छा नहीं।' जानकी ने मुँह फुला लिया और नजरें फेर लीं, जैसे, हवा का झोंका आने पर, बरामदे में सूखता रूमाल अपना रुख फेर लेता है।

इसी बीच चिराग खिसक गया।

'अच्छा नहीं, कहकर, क्या कर लेगी ?' मंगल गुर्राया।

'क्या कर लेगी वह, यह लो।' अमल ने चपत जड़ दिया। मुँह में ओढ़नी ठूँसकर जानकी खिलखिलाई।

चपत की आवाज पर कान्ति दीदी, तुलसी पर कुंकुम लगाना छोड़, दौड़ी, और नानी ने रामायण पर फिर से माला रख दी, और बाहर आ गयी।

'अरे भजन-पूजन तो करने दो पापियो !'

'नानी आयी, कहानी लायी' चुन्नी ताली बजाकर दुहराने लगी। और सेनगुप्त की दिव्या आगे बढ़ी, और आंगन-लगी-निंबिया की तरह झुककर, उसने नानी का हाथ थाम लिया, और उन्हें सहारा देकर, अंधेरे में रास्ता दिखाने लगी।

कहानी की आशा में अमल, मंगल और जानकी, अपना बखेड़ा

भूल गये। और कमल चुपके-चुपके दिव्या की वेणी के फूल उड़ाता रहा।

चमेली और बेला ने सम्मिलित स्वर में अंतिम शस्त्र चलाया—

'कहानी सुनाएँ, नानी कल-कल-कल,

पल में पाएँ गंगा नहाने का फल'।

किशोर सुन रहा है। कबसे सुन रहा है।

नन्हीं चुन्नी गोद में बैठी, और शेष सब बच्चे, नानी को घेरकर बैठ गये। अमल, कमल, जानकी, कपूर, दिव्या, चमेली, बेला–सब बैठे।

फिर, चिरागअली अचानक जैसे धरती से उग आया। लाठी के सहारे एक ओर खड़ा सुनने लगा। लक्खू बन्दर लप्-लप् दूध-भात खाकर, उकड़ूं-उकड़ूं दौड़ आया। पप्पू टाइगर पूँछ उठाये, बड़ी शान से सबसे पीछे आया—मानो आज की सभा का सभापति वही है।

अवसर देखकर, चांदी के पिंजरे में जामुन-कुरेद-कर, लारेल सुआ बोला—'कहानी सुनाएँ नानी'.........

उसके बाद हार्डी ने झट से साथ दिया—'कल-कल-कल' और चुपके से लारेल का जामुन खाना शुरू कर दिया।

जानकी हँसी तो, उसकी हँसी थी कि रुकती ही नहीं, जैसे किसी ने नलदार कलशी की टोंटी खोल दी है, और ठंडी धार बहती जा रही है, झर, झर, झर!

नानी ने पुकार कर कहा और किशोर ने भी सुना— 'रघुपति राघव रा...जा.. ... सब बोलो एक साथ राजा राम!

'राजा राम' की पुकार झोंकों की तरह उठी, और किशोर ने देखा जैसे ,उससे, तुलसी के चरणों में चढ़ाये, कान्ति के दीप की लौ कांप उठी!

'राजा राम' शायद उस लौ ने गाया।

और किशोर के होठ धीमे-धीमे हिले—'रा...जा....राम...'

किशोर फिर देखने लगा, देखता रहा।

नानी की चुटकी में सुँघनी नहीं थी। फिर भी उसने अपनी आदत के अनुसार, उँगलियाँ, नाक तक छुआ कर कहा—

'सच बोले सो धरमात्मा, झूठ कहे सो पापी। कुण्डलपुर के राजा

अंकड़ बंकड़सिंह के एक बेटी थी—चाँद की लकीर की तरह गोरी । किरन की तरह दुबली-पतली । और स्वभाव था उसका ओस की बूँद-जैसा ठंडा......

'फिर भी सौतेली माँ, तो सौतेली माँ ठहरी ! कहती, जाओ राजकुमारी, गहन वन का गेंदा फूल लाओ ।

'बेटी गेंदा-फूल लेने जाती । न जाती, तो क्या करती ? मां रानी खाना नहीं देती । राजा तो बाहर रहता । कभी सफेद दैत्य की लड़ाई पर । कभी काली गुफा के सिंह की शिकार पर । राजकुमारी जाती वन में । ज्योंही वन-शैल पर पहला पैर रखती, कांटे मुस्कराकर आपसमें कहते : 'आओ कांटो, आओ कांटो, राजकुमारी के पैरों का खून' । लेकिन, इसके पहले कि वे राजकुमारी के पैरों में चुभ कर दुल्हन की बेंदी-सा, उसका लाल लहू पीते, राजकन्या की मां, जो मरने पर अब वन की रानी बन कर रहती थी, आंधी का भेष धर कर हवाई-जहाज के पंखे की तरह फर-फर् आती, और काँटों को राह से दूर उड़ा ले जाती । और पहाड़ की चट्टानों पर पटक-पटक कर पीटती, जैसे धीरू धोबिन कपड़े पीटती है ।'

जानकी की हँसी रुकती नहीं ।

नर्स ऊँघने लगी है । नीचे पिताजी की कार का हार्न सुनाई दे रहा है ।

कान्ति, कान्ति कहाँ गयी । वन की राजकुमारी बनकर, कहीं चली गयी है......

—किशोर ने करवट बदली । लेटे-लेटे पसलियों में दर्द रहने लगा है ।

अँधेरे में चिरागअली वैसे ही खड़ा है, कार का हार्न सुनकर, लक्खू बन्दर की तरह दौड़ रहा है ।

नानी कह रही है—'चट्टानों पर पटक कर, कांटों को खाइयों में फेंक देती, उन खाइयों में नरक की रानियाँ रहती हैं, वे काँटे खाती हैं....

'राजकुमारी, दोपहरी तक गेंदा-फूल के पास नहीं पहुंच पाती, और वहीं मार्ग में बैठकर रोने-सिसकने लगती प्यास के मारे, भूख के मारे ।

तब बबूल का पेड़ कहता—'राजकन्या मत रोओ, आओ मेरे पास ! मैं तुम्हें अच्छे-अच्छे फल दूँगा। खिलौने दूँगा।'

'लेकिन राजकुमारी चतुर थी। जानती थी बबूल, बन का बनिया है। पैरों से ब्याज लेता है। कांटे इसका कर्ज उगाहते हैं। इसके पास फूल कहाँ, फल कहाँ !

'फिर आम का पेड़ कहता—'आओ राजकुमारी, तुम्हारी मां मेरी शाखा पर रहती है। इधर आओ, वह तुम्हें पका-मीठा आम देगी।'

'राजकुमारी कहती—मैं भूखी रह जाऊँगी, आम नहीं लूँगी। मुझे गेंदा-फूल चाहिए, नहीं तो सौतेली मां मुझे मार डालेगी.......'

'मार डालेगी' किशोर ने अस्फुट स्वर में कहा—'कान्ति को सौतेली मां मार डालेगी।'

'नानी सुँघनी की डिबिया खोजने लगी—'किधर गई बेटा, मेरी, सुँ........घनी....'

'अरे यह रही नानी-मां...तुम्हारे इस हाथ में।' चुहिया जानकी बोली और फिर कलशी से जलधारा बहने लगी। वह हँसती रही।

इस बीच दिव्या ने कहा—'बच्चो, तालियां बजाओ, ताली बजाओ चुन्नी ! नहीं तो कहानी लिखने वाला देवता रूठ जाएगा।'

दिव्या ने इस तरह गर्वपूर्वक कहा, मानो वह नानी का चार्ज ले रही है।

किशोर चुपके से बिछौने से उठा, और अंधेरे में सीढ़ियां टटोलता हुआ पिछवाड़े बगीचे में आया।

उसका दिल धड़क रहा था। कहीं सौतेली मां ने कान्ति को निकाल दिया तो वन का आम उसे फल देगा ?

बगीचे में आम का बड़ा पेड़ है। मां के दादा, एक बार इस गांव आये थे। अपने हाथों एक पौधा रोप गये थे। वही बढ़कर फूल-फल कर, फैल गया है। उसके नीचे पहुँचकर किशोर रुक गया, उसने गहरी-लम्बी सांस ली और थकान के भार से वहीं बैठ गया।

मन ही मन स्तुति करने लगा—'हे आम्र देवता, जब सौतेली मां

कान्ति को घर से निकाल दे, और वह कांटों से बचकर वन में तुम्हारे भाइयों के पास आए, तो तुम भाइयों को संदेसा देना कि वे कान्ति को भूखा न रखें'...इतना कहते-कहते, उसकी आंखें भर आयीं। आंसू बहने लगे। फिर भी वह नानी के बटुए की तरह, अपनी आँखें बंद किए रहा। तब, उसका कन्धा छूता सा कुछ गिरा 'छप्प'।

आम्र देवता ने उसकी प्रार्थना पर आम का फल भेजा है!

उसने आंखें खोलकर देखा--सचमुच आम है, पका-पीला आम और पास में कान्ति खड़ी है। उसे देख रही है टुकुर-टुकुर, जैसे शाला के छात्र अजायबघर में मालवा के हिरन को देखते हैं!

वह उठ खड़ा हुआ--'लो दीदी, यह तुम्हारे लिए है।'

'नहीं भैया, मां देख लेंगी, तो मेरी हड्डियां तोड़ देंगी। उनके कोप से मैं बचकर कहाँ जाऊँगी?'

'देखता हूँ, कौन है दीदी! तुम्हें मारने-पीटने वाला। याद है चिरागअली के जहाजों के बादशाह की कथा। मन होता है, पवन-अश्व पर तुम्हें बिठाकर नीलमपुर उड़ा ले जाऊँ, दीदी।'

किशोर ने दीदी की आँखों में देखा, सात समुन्दर का पारावार समाया था। फिर भी वह थीं, अपने जैसी आप कि उसे थाम-थाम कर कहने लगीं--

'तभी कहती हूँ न कि पागल है किशोर, पवन-अश्व पर कोई कुमार अपनी दीदी को नहीं बिठाता! दुल्हन को बिठाता है।'

'लेकिन सौतेली माँ कोप करे, फिर भी?....'

'फिर भी नहीं।'

'नहीं?'

'नहीं।' दीदी कितनी कठोर हो सकती हैं!

किशोर भावी आशंका से बेंत के पत्ते की तरह कांप-कांप उठा और कान्ति ने उसके कन्धे पर हाथ रखा तो, फूट-फूटकर रोने लगा।

दीदी अपनी पतली-गोरी उँगलियों से उसके काले-काले केश सहलाने लगी और धीमे से उसके भाल-नेत्र चूम लिये।

'चल भाई, मां कोप करेंगी ।'

तभी शोर सुनाई दिया--'किशोर कहां गया, किशोर कहां गया । कान्ति कहां है ?'

हाथ में लालटेन लिए चिरागअली और दो-तीन नौकर उधर आते दिखाई दिये ।

किशोर ने आम्रफल दीदी के अंचल में रख दिया ।

दालान की पहली सीढ़ी पर मां खड़ी थी । दीदी ने पैर बढ़ाया था कि तपाक की एक चपत पड़ी--'मुई, इस लड़के-को खा जाएगी ।'

किशोर वहीं सन्न खड़ा रह गया । दीदी के आंचल से आम्रफल गिर पड़ा । किशोर के दिल पर उस गिरावट की चोट पड़ती रही ।

पप्पू टाइगर ने अपने मुँह में आम को दबोच लिया और आंगन में गोल चक्कर काटने लगा ।

किशोर को धरती घूमती-सी लगी । नर्स कह रही थी--'इन्हें चक्कर आ रहे हैं । फिर शाक् लगा है ।'

भीतर, ठाकुरजी के दीप की लौ पर कांति का गरम आंसू-बूँद गिरा और लौ बुझ गई !

उस अँधेरे में, किशोर उठकर अपने बिछौने से, बाहर निकल गया । फिर समाचारपत्रों में 'गुमशुदा लड़के की तलाश' का विज्ञापन छपा था !

और किशोर आज लौटा है, बारह बरस बाद ! परिस्थितियों के बवंडर और समय की आँधियों ने, घर के सदस्यों को सूखे पत्तों की तरह भिन्न दिशा में उड़ा दिया है, और बड़ी हवेली में अतीत की सिर्फ एक गूँज बाकी रह गई है । और दिल में एक दर्द बाकी रह गया है, और रह गई है कांति दीदी की गोद में सिर छिपा-छिपाकर रो लेने की अमर प्यास !

प्यास, यह युगों से बढ़ती जा रही है, मगर धारा ओझल हो गयी है ।

और लौ बुझ गयी है !

● ●